Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चलनी में अमृत

कमला मार्कण्डेय

यशपाल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Chalni ma Amrit.

चलनी में अमृत

[Nectar in a Sieve]

Kamla Markanda.

कमला मार्कण्डेय

Sh. Ghulam Mohamed & Sons
Booksellers & Publishers
MAISUMA BAZAR.
SRINAGAR.

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७

Sanmarg Prakashan, Delhi

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Acc. No 36011
Cost Rs.6.50
Date ...7...3...73

H 83
K 120

© : अशोक प्रकाशन, लखनऊ

अनुवादक : **यशपाल**

प्रकाशक : अशोक प्रकाशन, लखनऊ
वितरक : **सन्मार्ग प्रकाशन**
१६-यू० बी०, बैंग्लो रोड, दिल्ली-७
मूल्य : ६-०० रुपये
मुद्रक : प्रेम प्रेस, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पहला भाग

[१]

कभी-कभी रात के नीरव कुहासे में उनके कदमों की चाप सुनाई दे जाती है। एकांत में वे मेरे पास आ जाते हैं और बने रहते हैं। उषा की किरणों से कुहासा सुनहला होने लगता है। पौ फटने की मरमर से नीरवता भंग हो जाती है। वे बिना आहट किये चल देते हैं। मुझे छोड़ जाते हैं।

सूर्य की किरणें फूटते ही सब लोग एक-एक कर उठकर आने लगते हैं। पहले मेरा बेटा, फिर बेटी और तब पुली—मेरा गोद लिया बच्चा। अब वह बच्चा तो नहीं रहा। मैं अपना अभाव पूरा करने के लिए उसे उसके गाँव से ले आई थी। इतना समय बीत गया है कि अब कोई भय भी नहीं है। कभी-कभी मैं पुली से पूछ लेती हूँ—"कैसा लगता है रे? घबराता तो नहीं?" वह मेरी ओर देखकर आँखों से और सिर झुकाकर संकेत से उत्तर दे देता कि संतुष्ट है। बुढ़ापे में मुझे और क्या चाहिए! मन को एक सहारा है।

पुली के हाथों की ओर देखती हूँ तो और भी अधिक संतोष होता है कि मैंने उचित ही किया। उसके हाथों में उँगलियाँ नहीं हैं। जो अंग कट जाय वह जुड़ तो नहीं सकता! उसके हाथ टुंडे हैं, पर हैं साफ़-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुथरे। उँगलियों के स्थान पर खाल सिकुड़कर गुलाबी दाग बन गये हैं। उसे कोई छूता नहीं। केनी और सिलवा के अतिरिक्त इस भेद को कोई भी नहीं जानता।

जब कुहासा या धूल न हो और मेरी आँखों में कष्ट न हो तो सामने वह बड़ी सफेद इमारत स्पष्ट दिखाई देती रहती है। मेरा लड़का वहीं काम करता है। केनी भी वहीं काम करता है। जवान और बूढ़े दोनों एक साथ काम करते हैं। यह सुन्दर सुथरी इमारत मेरे सामने ही एक-एक ईंट जुड़कर इतनी बड़ी बन गई है। केवल धन के बल पर इतने बड़े काम ऐसे नहीं हो सकते। लोगों की श्रद्धा और दया के बिना तो यह हो ही नहीं सकता था।

मेरे पिता गाँव के चौधरी थे। तीनों बड़ी बहनों के व्याह बहुत पहले ही हो चुके थे। सबसे बड़ी बहन शांता के व्याह में बहुत दिन तक धूमधाम रही थी। बड़ी-बड़ी ज्योनारें हुईं। खूब बड़ा दहेज दिया गया था—हीरे की बालियाँ, सोने का हार। सब काम गाँव के चौधरी की प्रतिष्ठा के अनुकूल हुआ। फिर पद्मा का व्याह हुआ। योग्य वर था। विवाह भी धूमधाम से हुआ। खूब दहेज़ भी दिया गया। तीसरी बहन थंगमा के व्याह में केवल अपने गाँव के बिरादरी के लोग ही आये। पहले दोनों अवसरों की तरह दूर गाँव के संबंधी भी नहीं आ सके। दहेज़ में केवल एक हीरे की नाक की लौंग ही दी जा सकी।

मा ने मेरा मुंह दोनों हाथों में लेकर अधीर स्वर में कहा—"बेटी, तेरे लिए क्या कर पाऊँगी? चार बेटियों के दहेज में किसकी कमर नहीं टूट जायगी!" मैं बोली—"मेरा व्याह खूब धूमधाम से होगा। लोग सब कुछ भूल जायँगे। तब भी बात रह जायगी।" ऐसा मैंने किसी कहानी में पढ़ा था; वही कह दिया। मा के चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी। मैं मा को जब चिन्तित देखती, यही कह डालती। एक दिन बड़े भाई ने सुन लिया और मुझे टोक दिया—"क्या बकती है? इस जमाने में चौधरी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को कौन पूछता है ! सब कुछ कलक्टर के हाथ में है। कलक्टर साल में एक बार दौरा करता है। साहब चाहे जिसे चौधरी बना जाय।"

पहली बार बड़े भाई से ही सुना कि पिता की कोई औकात नहीं थी। यह सुना तो ऐसा लगा कि हम निस्सहाय हो गये हों। सुनकर बुरा भी लगा। परन्तु बात सच ही थी। मैं जवान हुई तो देखा कि पिता की कोई औकात नहीं रह गयी थी, इसीलिए मेरे लिए बड़े ऊँचे कुल या सम्पन्न घर का वर नहीं मिल सका। जब व्याह हुआ, मैं बारह बरस की थी। व्याह हुआ एक गरीब किसान से। वह सभी तरह से गरीब था। उसके पास कुछ नहीं था, परन्तु अपनी बहू के लिए, मेरे लिए प्यार और चिन्ता की कमी नहीं थी। संबंधियों ने बहुत बातें बनाईं कि लड़की कैसे घर में दे डाली। मेरी मा भी रो रही थीं, पर उपाय नहीं था। न मैं सुन्दर थी, न पिता के पास दहेज था। कोई कर ही क्या सकता था !

❀ ❀ ❀

लोग कहते कि स्त्री को अपनी सुहागरात कभी नहीं भूलती। ठीक ही कहते होंगे ! परन्तु उस समय तो मैं बारह बरस की ही थी। बचपन में सहे उस पीड़ा और भय को क्या याद करूँ ? मेरे लिए तो पति के साथ बिताई उन्हीं रातों की स्मृति अनमोल है, जब मैं समझती बूझती और चाहती थी। खूब याद है कि विदाई के समय मुझे चक्कर आ गया था और मैं बीमार हो गई थी। मा द्वार पर खड़ी थीं। वह आँसू रोके हुए थीं, परन्तु जान पड़ता था कि अभी गिर पड़ेंगीं। द्वार के बाहर पिता खड़े थे। बैलगाड़ी पर मेरा दूल्हा बैठा था। दहेज में मिले बर्तनों से भरा टीन का बक्स और मुझे मिले कपड़े उसके समीप रखे थे। पिता ने मुझे गाड़ी पर बिठा दिया। मैं व्याह के कपड़े समेट सिर झुकाये बैठ गयी। गाड़ी झकोले लेती हुई चलने लगी। बैलों ने चाल पकड़ी। मैं सोचती जा रही थी—हाय राम कैसे कटेगी। कैसे सहूँगी ! तभी सोचा था कि यह कभी भूल नहीं सकूँगी। भूली कहाँ हूँ !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

. मेरे दूल्हे ने सांत्वना दी--"घबराती क्यों हो! सबके साथ ऐसा ही होता है। रोओ मत; आराम से बैठो।" उसने अपने समीप बैठ जाने के लिए कहा। वैसा ही किया। मेरे आँसू रुक गये और सूख गये।

मायके से ससुराल बहुत दूर थी। धूल से भरी राह पर हम दोपहर तक बैलगाड़ी में चलते रहे। राह में कई छोटे-छोटे गाँव पड़े। दोपहर हुई तो एक गाँव में रुके। पसीने से लथपथ बैलों पर धूल जम गई थी। इन्होंने बैलों को खोलकर तालाब में पानी पिलाया और भूसा दिया। हमने भी खाया--भात था, दाल थी, तरकारी थी, दही भी था। दो नारियल थे। इन्होंने हँसिए से नारियलों में छेद बनाये। दोनों ने नारियल का पानी भी पिया।

हम लोगों ने आधी घड़ी तक विश्राम किया। इन्होंने फिर गाड़ी जोती और चल दिये। आराम पाकर बैल भी ताजे हो गये थे। गले में बँधे घुंघरू और गेरू से पुते सींग हिला-हिला कर भागने लगे। उनके घुंघरुओं की खनक से राह-किनारे के वृक्षों पर बैठे पक्षी डरकर चीखते-चिल्लाते उड़ जाते थे। कहीं कोई खूब हरा-भरा स्थान आ जाता तो तोतों और मैनाओं के झुंड दिखाई दे जाते। बहुत गर्मी थी। मैंने ऐसी यात्रा पहले कभी नहीं की थी। गाड़ी के हिचकोलों से मुझे नींद आ गयी।

इन्होंने मुझे पुकारा--"उठो न। देखो, घर पहुँच गये।"

मेरी आँख खुली तो देखा सामने फूस की छत और गारे की दीवाल की झोपड़ी थी; साथ ही धान के खेत थे। वहाँ भी ऐसी ही दो-तीन और झोपड़ियाँ थीं। झोपड़ी के द्वार पर सौभाग्य की सूचक आम के पत्तों की बंधनवार बंधी हुई थी। पत्ते सूखकर हवा में खड़खड़ा रहे थे।

"यही है अपना घर।"—इन्होंने कहा, "आओ भीतर चलें।"

मैं गाड़ी से उतरी। बैठे-बैठे एक पाँव सो गया था और अंग-अंग जकड़ गया था। हम लोग भीतर गये। दो कोठरियाँ थीं। एक कोठरी अनाज की और दूसरी चीज-वस्तु रखने का कोठार-सा। तीसरी कोठरी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के लिए हाथ-हाथ भर की गारे की दीवालें बनाकर छोड़ दी गयी थीं।

"ये कोठरियाँ बन जायँगी तो आराम हो जायगा।"

मैंने सिर झुकाकर हामी भरी। गले में रुलाई उमड़ी आ रही थी। सोच रही थी, यह कच्चा छप्पर ही मेरा घर है! पाँव काँप रहे थे। खड़ी न रह सकी तो बैठ गई।

"हैं, क्या जी ठीक नहीं?"—इन्होंने पूछा।

"नहीं, कुछ नहीं।"—गले में भरी रुलाई रोककर मैंने उत्तर दिया, "ऐसे ही थक गई हूँ, और कुछ नहीं।"

इन्होंने कहा—"यहाँ तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा होगा! अकेली भी हो। घबराओ नहीं, कुछ दिन में घर पक्का भी हो जायगा।"

उनके स्वर में करुणा और चेहरे पर लज्जा का-सा भाव था, मानों क्षमा माँग रहे हों।

"नहीं तो"—मैंने कहा, "घबराना क्या है! अच्छा तो है। मैं यहीं रहूँगी।"

वे कुछ बोले नहीं। कोठार में चले गये और अजली में धान भरकर लौटे। मुझे दिखाकर बोले—"देखो तो कैसी फसल हुई है अबकी, देखो तो। रानी, ऐसी फसल हो तो अपने को किस बात की कमी।" यह बैलगाड़ी से सामान उतारने लगे। मैं सँभालने लगी।

बहुत पुरानी बातें हैं, इसलिए स्मृतियाँ धुंधली हो गयी हैं। कभी तो नीले आकाश के नीचे फैले हरे लहलहाते खेत और झकझोर वृक्ष, अपने लोगों के चेहरे, अतीत के धुंध में झुटपुटे और धूमिल हो जाते हैं और कभी भूल का पर्दा बीच से हट जाता है तो सभी कुछ स्पष्ट दिखाई देने लगता है। आज सुबह हमारे धान के खेत के साथ बहते नाले की याद ऐसी आ गयी कि मानो मैं किनारे बैठी हूँ। चाहूँ तो पानी में हाथ डाल दूं। परन्तु पानी का वह नाला दूर बीते जीवन का अंग था। मुझे ससुराल आये एक सप्ताह ही बीता होगा जब मैं कपड़े धोने के लिए नहर के किनारे गयी थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कितनी दूर तक किनारे-किनारे चलती जगह ढूंढ़ती रही, तब अच्छी जगह मिली। किनारे पर रेत थी और चट्टानें फैली हुई थीं। मैंने गठरी किनारे पर रखकर खोली और कपड़े पानी में डाल दिये। धारा ऐसी तेज नहीं थी कि कपड़ों को बहा ले जाती। मैंने धोती को घुटनों के ऊपर तक समेट लिया और पानी में खड़ी होकर एक पत्थर पर कपड़े धोने लगी। साबुन मायके से साथ ले आई थी। कपड़े धोकर घास पर सूखने के लिए फैलाने लगी। मैं धूप में कपड़े फैला रही थी तो देखा कि हमारी पड़ोसिन काली दो स्त्रियों के साथ नाले की ओर चली आ रही थी। काली के साथ की स्त्रियों को मैं पहचानती नहीं थी। तीनों के सिर पर कपड़ों की गठरियाँ थीं। दो की गोद में बच्चे थे और तीसरी के पेट में। उन्होंने मुझे पुकारा। मैं लजाकर उनकी ओर चली गयी। फिर उनसे जान-पहचान हो गयी। वे दोनों भी हमारी पड़ोसिनें थीं। काली का शरीर भारी था। भारी कूल्हे, उठी हुई छातियाँ। उसके खेत हमारे खेतों से मिले हुए थे। जानकी शरीर की दुबली थी, चेहरे पर भोलापन था। उसके कई बच्चे थे। उसके पति की गाँव में दुकान थी। कुन्ती सबसे छोटी थी दुबली-पतली। गर्भ का बोझ था, परन्तु चाल में सुघड़पन था।

कुन्ती की ओर संकेत कर काली ने मुस्कराकर कहा—"यह इसका पहला है; लेकिन यह पीछे नहीं रहेगी। आदमी इसका बड़ा तेज है।" और वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। जानकी ने उसे भौं चढ़ाकर डाँट दिया- — "चुप रह। लड़कियों से ऐसी बात करती है!"

"अरे तो कौन कुमारी है। कुन्ती तो पेट में लिये है और यह नयी, इसे भी देख लेना। मर्द छोड़ थोड़े ही देते हैं किसी को।"

कुन्ती ने पीठ फेर ली। जानकी भी चुप रह गया। शायद दोनों ही जानती थीं कि काली को कहने-सुनने से कुछ लाभ नहीं। काली बात करने के लिए मेरी ओर बढ़ आयी।

"तुम्हारा नाम रुकमनी है न? तुम नाथन की बहू हो। गाँव भर के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोग कह रहे थे, नाथन की बहू जाने कैसी आयेगी। अरे औरत-औरत सब एक। तुम्हारे मर्द ने कितना कोहराम मचा रखा था। एक नई कोठरी बना डाली। मेरा आदमी मदद देने गया तो कहने लगा, रहने दो भाई, अपने हाथों ही बनाऊँगा।"

"क्या, अपने हाथों कोठरी बनायी?"— मैंने पूछा, "मुझे तो यह नहीं बताया।"

"हाँ, हाँ। अपने हाथों और खेत यों ही पड़े थे। एक दिन तो शिवजी ने उसे फटकारा भी। शिवजी है तो जमींदार का गुमाश्ता ही, पर आदमी भला है!"

मुझे बड़ी लाज लगी। इन्होंने तो अपने हाथों मेरे लिए कोठरी बनायी और मुझे वह अच्छी ही नहीं लगी। महीना भर बीत गया। हम दोनों खूब हिल-मिल गये तो एक दिन मैंने इनसे बात की—"तुमने यह कोठरी अपने हाथों बनायी थी? हाय, मुझसे कहा क्यों नहीं?"

"किसने कहा तुझसे?"—वे बात टालने लगे।

"काली ने बताया मुझे। उस दिन नाले पर कपड़े धोने गई थी तभी बताया था उसने।"

"भली कही उसकी। वह जाने क्या-क्या बका करती है!"

"हाय, तो क्यों न बताये! तुमने मेरे लिए अपने हाथों इतना किया।"

यह कुछ पल सोचते रहे, फिर बोले—"अब तुम बच्ची थोड़े ही हो। सब समझने लगी हो। अभी तुम्हारे ब्याह को दिन ही कितने हुए हैं!"

❀ ❀ ❀

सुहावनी ऋतु हो, आसपास खेत लहलहा रहे हों, अपना आदमी अपने में रमा हो, अपना घर हो, दुर्दिन के लिए थोड़ा अन्न हो तो अंग-अंग में अपने आप ही फुरन होने लगती है। औरत और चाहेगी क्या! मन मेरा किलक उठता। सूर्योदय से सूर्यास्त तक मेरे पाँव धरती पर न लगते, फिर भी थकान न होती। सुख था, शान्ति थी। भगवान् की बड़ी कृपा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है । बड़े-से-बड़े दुःख देखे, पर उस सुख की याद तो है। वे दुःख न आते तो इस सुख का मोल भी जान न पाती। माना कि हमारे खेत मौरूसी नहीं थे, जैसी कि पिता की धरती थी, परन्तु भरोसा था कि खेतों का मोल चुका देंगे। बैलों की जोड़ी अपनी थी। दूध के लिए एक बकरी थी। हर फसल से चावल बचाकर बोरियों में कोठार में रखते जाते थे। दो आदमियों के लिए सुबह-शाम खाने को कम नहीं था। दाल भी बना लेते। कभी-कभी एक नारियल कतर कर दूध में खीर बना लेते। कभी-कभी पराठा भी सेंक लेते।

सप्ताह में एक-दो बार पास के गाँव से शक्कर या तरकारी खरीदने भी चली जाती। हमारी बकरी को व्याये बहुत दिन हो गये थे। दूध कम हो गया था, इसलिए दुर्गा अहीर के यहाँ से दही भी लेती आती। गाँव के आदमी भले थे। मिलनसार थे। कई लोगों होनचाहच-से जान गई थी। बुढ़िया को सब लोग दादी पुकारते थे। बेचारी मूँगफली और अमरूद बेचकर निर्वाह करती थी। हनुमान की बिसाती की दुकान थी। जानकी के मर्द पेरूमल की सबसे बड़ी दुकान थी। बि ःवास महाजनी करता था। जानकी और काली के अपने ही यहाँ बच्चों और घरबार के काम से फुरसत न रहती थी। फिर भी कभी-कभी मिलने आ जातीं। कुन्ती दुबली-पतली तो थी ही, उससे घर का बोझा भी न सँभला। हमी लोग उसके लिए सौदा ला देतीं और कभी-कभी दूसरी मदद भी कर आतीं। उसका ढंग ही दूसरा था। कुछ चुप और सिमटी-सिमटी सी। अपनी बात मन में रखे रहती। मुझसे कुछ अधिक ही बच-बच कर रहती, न जाने क्यों!

लोग कहते थे कि वह बड़े घर की लड़की थी। यही बात लोग मेरे लिए भी कहते थे। मेरी बात दूसरी थी। मेरे तो रूप नहीं था, परन्तु कुन्ती के तो अच्छा खासा रूप था। उसे बड़े घर का वर क्यों नहीं मिला!

मुझे तो गरीब किसान से ब्याही जाने का दुःख नहीं था। वह किसान था तो क्या! वैसा भला आदमी लाखों में एक होता है। जाने कुन्ती का आदमी ऐसा न रहा हो!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे विचार में तो अपने से ऊँचे घर की लड़की व्याहने में कोई भलाई नहीं। ऐसी बहू देखने भर को होती है, काम-काज को नहीं। मेरी-जैसी हो तो और भी बुरा; मेरे न रूप ही था न कोई गुण ही। बकरी दुह लेना तक नहीं जानती थी। काली और जानकी ने ही सिखाया। न मुझे बीज रोपना आता था, न दही बिलोना, न धान कूटना। इन्होंने जाने कितने संतोष से मुझसे निभाया होगा। न कभी आँख मैली की, न कभी कड़ा बोल बोला। कभी रत्ती भर भी काम कर दिया तो सराह-सराह कर थकते नहीं थे। छप्पर के पीछे मैंने काशीफल के कुछ बीज रोप दिये थे। धरती अच्छी थी। बेलें तुरन्त ही फैलने लगीं। मैं चाव से पानी ला-लाकर उन्हें सींचती रही। कुछ ही दिन में बेलों से जगह भर गयी। फूल आये और फिर छोटे-छोटे फल लगे। फल बढ़ते गये और खूब बड़े हुए, पीले और लाल। पहला फल पक गया तो मैं काटकर कोठरी में ले गयी। ये उसे देखकर इतनी सराहना करने लगे कि क्या कहूँ! खुद चाहे खेतों फसल काटकर ढोते रहे हों।

"तुम तो ऐसे खुश हो जैसे काशीफल कभी देखा ही नहीं।"—मन की पुलक दबा लजाते हुए मैंने कहा।

"पर भई यह तो अपनी बेल का है। इसके क्या कहने!"—इन्होंने कहा, "रुकू, तुम इतनी स्यानी हो, हम क्या जानते थे!"

मैं अपनी प्रसन्नता और अभिमान छिपाने के लिए कद्दू को उठाकर दूसरी ओर चली गयी। परन्तु प्रसन्नता और अभिमान तो रोम-रोम से और मेरे चेहरे से फूटा पड़ रहा था। उत्साह इतना बढ़ा कि मैंने पिछवाड़े की धरती में सेम, बैंगन, शंकरकन्द और मिर्चें भी बो दीं। अब हमें सब्जी-तरकारी की क्या कमी थी!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[२]

मुझसे कुछ मास पहले ही कुन्ती के बच्चा हुआ। बच्चा तो हुआ पर बेचारी जाते-जाते बची। जानकी तब बीमार थी। काली गाँव में नहीं थी, इसीलिए जो बन पड़ा मुझे ही करना था। कुन्ती का आदमी दाई को बुलाने गया था। मैं अकेली ही उस हालत में उसके पास थी। बेचारी पीड़ा से बेसुध-सी थी। मुझे पहचाना तो बोल उठी, तुम यहाँ क्यों आई हो। तुम जाओ यहाँ से। "कैसे चली जाऊँ मैं! मुझसे क्यों बिगड़ती हो?"—मैंने समझाया।

"नहीं, तुम जाओ, तुम्हारी जरूरत नहीं।"—उसने कहा।

"हाय, मैं तुम्हें कैसे छोड़ जाऊँ! यहाँ दूसरा कोई भी तो नहीं।"

"नहीं, तुम जाओ।"—कुन्ती ने जिद की, "दाई आ जायेगी।"

"मैं कैसे चली जाऊँ!"—मैंने कहा, "तुम्हारा मर्द ही क्या कहेगा!"

वह चिल्लाती रही, परन्तु मैं उसे छोड़कर नहीं गयी। उसने देखा कि मैं नहीं जाऊँगी तो अपनी चीखें दबाकर गुम-सुम हो लेट गयी, परन्तु उसके सारे शरीर से पसीने की धारें बह रहीं थीं। कुन्ती थककर शिथिल लेट गयी थी। उसे नींद आ गयी। उसके बच्चे को मैंने उसकी बगल में लिटा दिया। इसी में साँझ हो गयी। लौटी तो अँधेरा हो रहा था। वह चिन्ता में बेचैन हो रहे थे। मुझे देख बिगड़कर बोले—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"घर लौटने की तुम्हें सुध ही नहीं रही। अपना चेहरा तो देखो, क्या हो रहा है तुम्हें ! जैसे जान ही नहीं रही।"

"तो मैं क्या करती।"--मैं बोली, "चुड़ैल दाई को पूछो, जाने कहाँ चली गयी थी ? या कुन्ती के बेटे को दोष दो, जो अड़ा बैठा था।"

"पर तुम्हें अपनी हालत का तो ख्याल करना था। तुम्हारा अपना पाँव भारी है।"--इन्होंने कहा। यह पहली बार ही गुस्से में बोले थे। मेरी आँखों में आँसू आ गये। मेरा सिर चकरा गया तो बैठ गयी। सोचा, मेरा ही ख्याल करके ही तो कह रहे हैं। इतना ख्याल करते हैं, अच्छा ही है। ख्याल न करें तो......।

तब से मैं सँभल कर रहने लगी। खेती का सब बोझ इन्हीं के कन्धों पर डाल दिया। बोवाई के दिन थे। काम भी अधिक था। खेतों में पानी रोकने के लिए मेड़ें बाँधने को थीं। खेतों में खाद डालने को थीं। खेतों में से घास निकालने को थे और धान रोपने को थे। इन सब कामों में झुकना तो पड़ता है। इन्होंने मुझे कुछ नहीं करने दिया।

करने को कुछ नहीं था तो मैं घर में बैठी लिखने का अभ्यास करने लगी। लिखना-पढ़ना पिता ने ही सिखा दिया था। पिता मुझे लिखना-पढ़ना सिखाते थे तो लोग हँसते थे। कहते थे, बड़े लोगों की बड़ी बातें; लड़की को पढ़ना-लिखना सिखा रहे हैं ! पर मैं जानती हूँ उनका अभिप्राय था कि दु:ख और संकट में इसी से मुझे कुछ शान्ति मिल सकेगी। पिता ने हम छः भाई-बहनों को पढ़ना-लिखना सिखाया था। मुझसे कहते रहते--"बेटा, पढ़ना-लिखना ही सीख लो,तुम्हें देने के लिए मेरे पास और क्या है !" मैं उनकी बात की पीड़ा न समझ कर भी लिखने-पढ़ने में लगी रहती।

मा कहती रहतीं--"लड़की को पढ़ाने से क्या होगा ! उसे तो तगडा वर चाहिए। मैं पढ़ी नहीं तो कौन बात में कमी रह गयी। अपना नाम नहीं लिखना आता तो अपना नाम भूल तो नहीं गयीं। तुम्हारे घर की सँभाल में कोई कमी रह गई हो तो कहो। तुम्हारे बच्चे किससे कम हैं !"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पिताजी हँस देते—"ठीक ही कह रही हो।" पर पढ़ाने में शिथिलता न करते।

मैं सोचती, मैं भी अपने बच्चे को खूब पढ़ाऊँगी, इसलिए लिखने का अभ्यास करती रहती। जानकी बीमारी से उठी तो मिलने आई। मुझे लिखते देखा तो चकित रह गयी। परन्तु काली खाने दे तो नाक चढ़ा ली। उसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर था। बोली—"बाल-बच्चा हो जाने दो, सब खिलवाड़ भूल जायेगी। दो-तीन को सँभालोगी तो सुध ठिकाने लग जायेगी। हम लोगों को इन बातों के लिए फुरसत कहाँ!"

"तुम्हें फुरसत नहीं तो यहाँ कैसे आई हो?"—मैंने पूछा, "गाँव में घूम आने की फुरसत भी तो मिलती है। मैं बच्चों के लिए ही तो अभ्यास कर रही हूँ कि उन्हें भी सिखा पाऊँगी।"

काली ने मुस्कराकर कह दिया—"हट पागल।" नाराज नहीं हुई। उसका स्वभाव अच्छा था।

इन्होंने जब मुझे पहली बार लिखते देखा तो पास बैठकर माथे पर त्योरियाँ डाल, भवें सिकोड़ बड़े ध्यान से देखने लगे। फिर उठकर कुछ सोचते हुए बाहर चले गये। लौटे तो मेरे सिर पर प्यार करके बोले—

"बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है। रुकू, हम तो पहले ही जानते थे, तुम बहुत सियानी हो।"

मैं क्या नहीं जानती थी कि इन्होंने कितना मन मसोसकर यह बात कही होगी! वे एक बार जो निश्चय कर लेते थे, उसे निभाते थे। इन्हें दसखत के लिए अपना नाम लिखना भी नहीं आता था। पति के लिए पत्नी को अपने से बढ़कर स्वीकार कर लेना सरल तो नहीं हो सकता! कोई दूसरा होता तो जाने क्या करता, और कहता परन्तु इन्होंने मुझे कभी पढ़ने-लिखने से नहीं रोका।

❀ ❀ ❀

मैं खेती का काम नहीं कर पाती थी, इसलिए छप्पर के पीछे लगाया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपनी बगिया में ही लगी रहती। हमारे बैंगन, मिर्चें और काशीफल खूब बढ़ रहे थे। उन्हें अपनी आँखों के सामने नित्य बढ़ते देखकर मुझे बहुत विस्मय होता था। मैं सोचती थी, एक बीज के कड़े छिलके के भीतर एक वृक्ष के जीवन का फैलाव कैसे सिमटा रहता होगा!

यह मुझे इस प्रकार विस्मय करते देखते तो समझाते—"इसमें अचरज की बात क्या! तुमने कभी खेती-बारी का काम किया नहीं, इसलिए तुम्हें इन बातों में अचम्भा लगता है। यह सब देखती-करती रहोगी तो फिर उधर ध्यान नहीं जायगा।" परन्तु तब से मैं न जाने कितना बो-बटोर चुकी हूँ, मगर इन बातों में मुझे अब भी आश्चर्य ही होता है। एक दिन मैं सेम की बेलों को तार की नई बनाई बाड़ पर चढ़ा रही थी। काशीफल की बेलों में कुछ सर-सराहट-सी जान पड़ी। सोचा, फल पक रहे हैं, पंछी या चूहे बरबाद कर रहे होंगे। जाकर हाथ से पत्ते हटाकर देखा—

चीख मारकर मैं पीछे हट गयी। काला फनियर साँप था। उसने काटा नहीं। शायद मुझे देख वह खुद ही डर गया था, पर मेरी घिग्घी बँध गयी, मुट्ठियाँ भिच गयीं। मेरे पाँव न उठते थे। और फिर चिल्लाती मैं कोठरी में भागी। भय के मारे पीछे भी नहीं देखा।

यह दौड़ते हुए आए। मुझे कंधों से सँभाल लिया और चिल्ला उठे—"क्या हुआ? क्या हुआ?"

"साँप!"—बड़ी कठिनाई से मेरे मुंह से निकला, "काला फनियर साँप। मेरा हाथ लग गया।"

यह मेरी ओर ऐसे देख रहे थे, मानों मैं पागल हो गई हूँ।

"अच्छा तू यहीं बैठ।"—इन्होंने कहा, "यहीं बैठ कोठरी में।" और बाहर चले गये। मैं भय से काँप रही थी। चाहती थी, इनके पाँव पकड़ कर चिपट जाऊँ, जाने न दूँ। अकेले मुझे डर लग रहा था।

यह जल्दी ही लौट आये। हाथ में हंसिया था। बोले—"साँप वहीं बैठा था।" इन्होंने हँसिए से साँप के टुकड़े-टुकड़े कर दिये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और मिट्टी में दबा दिया कि मैं देखकर डरूँ नहीं।

"तुम इतनी बड़ी हुई क्या साँप पहले कभी देखा नहीं? साँप तो सभी जगह होते हैं। पेड़ों के साँप, पानी के साँप, जमीन के साँप, साँप कहाँ नहीं! आदमी होशियार रहे, इनसे डरना क्या!"

"हाँ, ठीक है"—मैंने लजाकर कहा, "मेरा हाथ लग गया था, इसीलिए डर गई थी।"

"पर तुम तो ऐसी भागी!"—इन्होंने मुस्कराकर कहा, "मैं सोच रहा था, ऐसी हालत में इतना भाग कैसे पायी।"

मैंने लजाकर आँखें झुका लीं। अब मुझसे चला-फिरा नहीं जाता था। मैं सोचने लगी, भागते में ऐसी ही लगी होऊँगी, जैसे भैंस भाग रही हो। इन्होंने मुझे शरमाते देखा तो बोले—

"शरमाती क्या हो, अब थोड़े ही दिन की बात है। सब ठीक हो जायगा।"

❀ ❀ ❀

उनका विचार ठीक ही था। साँप से उस तरह डर जाने के कारण ही या उस अवस्था में भागने से कुछ ही दिन बाद बच्चा समय से पहले ही हो गया। आठ ही महीने का था, परन्तु स्वस्थ था। काली सुनते ही दौड़ी आयी। दाई भी समय पर पहुँच ही गयी। मुझे सुध आई तो इन लोगों ने बच्चे को मेरी गोद में दे दिया। मैंने कपड़ा उठाकर उसे देखा। लड़की थी, परन्तु सुन्दर। मैंने मुंह फेर लिया। मेरी आँखों में आँसू आ गये। भला कौन स्त्री चाहती है कि पहले लड़की हो। काली ने बच्चे को मुझसे ले लिया और बोली—

"दिल छोटा न करो। अभी बहुत जिन्दगी पड़ी है, बहुत-से होंगे!"

काली ऐसा क्यों न कहती? उसका अपना मन जो भरा था। उसके तीन लड़के थे। इसीलिए मुझे ढाढ़स दे रही थी।

बाद में अपने विचार पर मुझे लज्जा भी आयी। काली ने मेरी इतनी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सहायता और सेवा की कि मन में पछतावा हुआ कि मैंने उसकी बाबत क्या सोच डाला था। मन में विचार तो सभी तरह के आ जाते हैं, परन्तु यदि कमीने विचारों के लिए मन में पछतावा हो जाय तो मन साफ हो जाता है। मैंने कुन्ती के कष्ट में उसकी सहायता की थी, काली ने मेरी सहायता की। बल्कि बहुत अधिक ही किया। घर भर को वही सँभालती रही और राँधने-धोने का काम भी वही करती रही। इतना ही नहीं, कुएँ से पानी लाकर बेचारी छप्पर के पीछे लगी तरकारियों को भी सींच जाती। एक दिन सुबह मैंने देखा कि काली फूलों से लदी काशीफल की बेलों में हाथ डाल कर सुलझा रही थी। देखकर मेरा शरीर सिहर उठा। जान पड़ा, मेरा हाथ साँप से फिर छू गया है। मैं चीख उठी।

मेरी चीख सुनकर काली दौड़ी हुई आई। "क्या हुआ है री तुझे ?"—हाँफते हुए काली ने पूछा। मेरी चीख से बच्ची चौंक उठी थी और जोर से रो उठी। काली को भली-चंगी देखकर मुझे संतोष हुआ। पर मैं झेंप के कारण कुछ कह भी न सकी। फिर अपने भय का कारण उसे बताना ही पड़ा। अपनी भीरुता पर पर्दा डालने के लिए साँप की कहानी सुनाई और साँप का आकार खूब बढ़ा-चढ़ा कर बताया। और कल्पना में उसके फन उठाकर झपटने की बात भी कह दी।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ सांत्वना और सहानुभूति प्रकट करने में चतुर होती हैं। "हाय, डर तो लगता ही है", काली बोली, "पर तुम्हारे आदमी ने नाग मार दिया सो अच्छा नहीं किया। जानती हो, नाग देवता होता है।"

यह बात मैंने इन्हें बताई तो उपेक्षा से बोले—"धत्त, वह तो पागल औरत है। नाग देवता मेरी घरवाली को फन मारे और मैं उसे पूजूं—छोड़ इन बातों को।"

यह बात मैंने भुला दी, परन्तु जब कभी फल तोड़ने के लिए या बेलों में से घास-कूड़ा साफ करने के लिए उनकी ओर जाती तो साँप की बात सदा ही याद आ जाती। यह भी मन में आया कि भय के इस कारण को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उखाड़ ही फेकूँ. परन्तु उनमें इतने सुन्दर और इतने बड़े-बड़े फल लग रहे थे कि उन्हें उखाड़ते भी न बना।

❀ ❀ ❀

बेटी का नाम हम लोगों ने इरावती रखा था। इरावती महानदी है। जल से अधिक आवश्यक और प्यारी वस्तु और क्या होगी। परन्तु इतनी छोटी-सी लड़की का इतना बड़ा नाम! हम उसे इरा ही पुकारने लगे। इनके मन में तो लड़के की ही चाह थी। सोचते होंगे, लड़का होता तो खेती के काम में हाथ बँटाता। हाट-बाजार में साथ चलता। दहेज का ऋण सिर पर लिये आनेवाली लड़की से उन्हें क्या संतोष होता, जो एक दिन विदाई का दाग दे जाने के लिए ही आती है। इरा इन्हें बप्पा कहकर पुकराने लगी तो इनकी उपेक्षा न टिक सकी और ये उसे प्यार करने लगे। इरा गोरी और गदबदी थी। काले घुंघराले बाल। जाने वह इतनी सुन्दर कैसे हो गयी। सभी लोग विस्मय करते थे; न मैं सुन्दर थी, न यह। मुझे स्वयं विस्मय था। लोग कहते थे, यह तुम्हारी लड़की नहीं है तो मुझे अपनी सन्तान के लिए गर्व होता। मन में सोचती, शायद भगवान् ने मेरी कुरूपता का ही यह बदला दे दिया है।

ये बेटी को देखकर कहने लगते।—"बिलकुल तुम्हारी अनुहार है—" परन्तु इनके सिवा और तो किसी को ऐसा जान नहीं पड़ता था।

इरा जल्दी ही घोंटू चलने लगी। वह घर भर में मेरे पीछे-पीछे घूमती रहती। कुछ ही दिन में चलने भी लगी और इनके पीछे खेतों की ओर भी चल देती थी।

काली ने मुझे धमकाया—"हाय, इतने छोटे बच्चे को ऐसे चलने देती है। उसकी टाँगें मुड़ जायँगी तो!" मैं डर गई। जब भी लड़की को खड़े होते या चलते देखती झपटकर गोद में उठा लेती, परन्तु वह मानती कहाँ थी! उसे तो दिन भर यही काम था। मैं उसे न चलने देने की चौकसी में लगी रहती तो और सब काम कौन करता! धान रोपने का समय आ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गया था। मैं इनके साथ दिन भर खेतों में धान रोपती रहती। जमीन तैयार थी। अनाज बोने का समय भी आ गया था। ये हल चलाते और मैं इनके पीछे-पीछे टोकरी कमर पर साधे बीज डालती जाती।

खेतों का काम निबटा तो छप्पर बदलने को था। बरसात में छप्पर गल गया था। इन्होंने नारियल के पत्ते काटकर सुखा रखे थे। ये मूंज काट लाये और हम रस्सियाँ बटने लगे।

इरा हम लोगों के पास बैठी खेलती रहती। कभी वह पक्षियों की ओर देखकर और कभी हम लोगों की ओर देखकर किलकारियाँ भरती रहती। दोपहर में गर्मी अधिक हो जाती तो मैं पेड़ की डाल से झोली बाँधकर उसे सुला देती। मेरी मा को इरा से प्यार था। प्रायः ही बैलगाड़ी में बैठ उसे देखने आ जाती। बुढ़ापे में झकोले सहना उसके लिए कठिन ही था। कभी मैं ही मायके चली जाती, परन्तु कम ही जा पाती। मेरे अपने घर में इतना काम था कि किस पर छोड़ जाती। मैं मायके न भी जा पाती तो मा बुरा न मानतीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[३]

पड़ोस और जान-पहचान की स्त्रियों के एक के बाद एक सन्तान होती जा रही थी। वे घबराकर कह बैठतीं—बुढ़ापा ही आ जाय तो इस संकट से तो पीछा छूटे। काली प्रायः ही कहती रहती, उसके छः हो चुके थे। कुन्ती की भी ऐसी ही अवस्था थी। जानकी के तो आये साल बाल-बच्चा हो रहा था। वह घबराकर कह बैठती, हाय राम, यह कब तक चलेगा। ये लोग मुझे देखकर कह बैठतीं, तू घबरा नहीं, तेरा भी समय आ रहा है। तुझे भी यह मुसीबत सदा नहीं बनी रहेगी। परन्तु मैं मन-ही-मन घुटी जा रही थी। क्या मेरे भाग्य में केवल एक लड़की ही थी। इन्होंने भी कभी कुछ नहीं कहा; परन्तु इनके मन की चिन्ता तो मुझसे छिपी न थी।

मा को भी इस बात का बहुत दुःख था। जब भी मैं मायके जाती, मा मुझे देवी के मंदिर में ले जातीं। हम दोनों बैठकर घंटों देवी के सामने गिड़-गिड़ाती रहतीं। हमारे सिर दर्द से फटने लगते, परन्तु देवी-देवताओं को और हजारों चिन्ताएँ हैं। देवता किस-किस की सुनें। बरस-पर-बरस बीतते गये, मेरे बस एक ही लड़की थी, इरा।

इरा छठे बरस में थी। मेरी मा को क्षय का रोग हो गया। बेचारी को बिस्तर से उठना कठिन था, परन्तु उसे मेरे कोई लड़का न होने की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चिन्ता सता रही थी। एक दिन मा ने मुझे अपनी खाट के पास बुलाकर एक शिवलिंग मेरे हाथ में देकर कहा—

"इसे गले में पहन ले। भगवान् तुझे एक नहीं, बहुत-से बेटे देंगे। मेरी बात का भरोसा कर। मरते हुए आदमी की बात झूठी नहीं होती।"

"मा, तुम यह चिन्ता छोड़ो।"—मैंने कहा, "तुम अच्छी हो जाओगी।" माँ चंगी तो नहीं हुईं, परन्तु उनकी बीमारी जल्दी भी समाप्त नहीं हुई। उनकी मृत्यु से कुछ मास पहले पिता एक नए डाक्टर को लाये। एक फिरंगी डाक्टर हमारे गाँव में आ बसा था। यह कोई नहीं जानता था कि वह कहाँ से आया और कौन उसे तनखा देता था। मेरे पिता तो इतने घबराये हुए थे कि मा का कष्ट दूर करने के लिए भूत-प्रेत को भी घर में बुला लेने में उन्हें संकोच न होता। उस दुःख में ही पहली बार मेरा परिचय कैनिगटन से हुआ था। लोग उसे कैनी ही पुकारते थे। खूब लम्बा, दुबला-सा आदमी! पीला चिट्टा रंग, हरियाली लिये नीली आँखें। इससे पहले मैंने किसी फिरंगी को नहीं देखा था।

मैं उसकी ओर टकटकी बाँधे देखती रह गई।

"मुझे मन भर देख लिया हो तो अब बीमार को दिखा दो।"—कुछ देर चुपचाप खड़े रहकर वह बोला।

मैं शर्मा गई। डाक्टर हमारी ही भाषा में बोल रहा था, इस बात से विस्मय भी हुआ।

"हाँ भीतर आइये।"—मैंने कहा और मैं इतनी घबरा गई थी कि ठोकर खा गई।

मा नीरोग हो जाने की आशा छोड़ चुकी थीं। डाक्टर ने सहानुभूति से बीमार को देखा, परन्तु कोई मिथ्या आशा नहीं दिलायी, इसलिए मा को उस पर भरोसा भी हो गया। वह उसका विश्वास और आदर करने लगीं। डाक्टर प्रायः आता रहता था। कभी बिना बुलाये ही आ जाता। उसकी दवा से मा के पीड़ा में शान्ति मिलती और उसकी बातों से सांत्वना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बड़ी शान्ति से उन्होंने प्राण दे दिये। उनकी मृत्यु से दुःख तो हमें हुआ ही, परन्तु उन्हें पीड़ा से मुक्त देखकर शान्ति भी मिली।

मायके से चलने से पहले मैंने कैनी को बहुत धन्यवाद दिया और कहा—"डाक्टर साहब, आपकी कृपा का भार तो हम पर जन्म भर रहेगा। हम लोगों को याद रखियेगा। कभी हमारे गाँव में आयें तो हमारे घर को अपना ही घर समझियेगा।"

डाक्टर ने कहा—"इसमें कृपा और धन्यवाद की कोई बात नहीं।" मैं लौट रही थी तो डाक्टर ने फिर पुकार लिया—

"तुम्हारी तबियत कैसी रहती है ? मन में चिन्ता है या कोई कष्ट है ?"

"डाक्टर साहब, मा के मरने का दुःख किसे नहीं होता!"—मैंने उत्तर दिया।

"यह तो मैं भी समझता हूँ। इसके अलावा भी कुछ और बात है! छिपाती क्यों हो ?"

मन में सोचा, डाक्टर साहब ने मेरे मन की बात भाँप ली है। शायद मा ने इनसे कुछ कह दिया हो। मैं चुप खड़ी रही। डाक्टर ने फिर पूछा—"क्या बात है ?"

डाक्टर से जान-पहचान तो अच्छी-खासी हो गयी थी। फिर भी ख्याल आया, एक विदेशी आदमी से ऐसी बात क्या कहूँ। आखिर कह ही दिया—"डाक्टर साहब, एक लड़की हुई थी, फिर कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ।" एक बार बोली तो फिर बोल ही पड़ी,—"मैं अच्छी-भली हूँ तन्दुरुस्त हूँ। एक लड़की तो हुई थी, ऐसी है कि सब लोग देखकर बात करते हैं। कोई ऐसा अधर्म और पाप भी हम लोगों ने नहीं किया। हम लोगों के बाल-बच्चा क्यों न हो।"

"इसीलिए परेशान हो ? अच्छा किसी दिन आना, देखेंगे, क्या हो सकता है।......कोई वायदा तो कर नहीं सकते।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाने मुझे क्यों जान पड़ा कि डाक्टर मेरी इच्छा पूर्ण कर सकता है। एक भरोसा-सा मुझे हो गया। परन्तु उस विदेशी के पास जाने में आशंका भी होती थी, जाने का साहस न हुआ। मा के दिये गले में पहने शिवलिंग का ही भरोसा किये रही। आखिर बहुत दिन बाद अधीर होकर डाक्टर के यहाँ गयी। उसने मेरे इतने दिन न आने के विषय में भी कुछ न कहा।

❀ ❀ ❀

जब मेरा पहला लड़का हुआ इरा सात बरस की थी। छोटा भाई हो जाने से वह भी बहुत उत्साहित हुई। बेचारी इतने दिन अकेली ही थी। काली और जानकी के बच्चे इरा से बहुत बड़े थे। कुन्ती का लड़का उसकी उमर का था, परन्तु कुन्ती तो हम लोगों से दूर ही रहती गयी। हमारा और उसका मिलना-जुलना ही नहीं रहा।

पहला लड़का होने पर ये बहुत प्रसन्न हुए। मेरे पिता ने सुना तो उन्हें भी बहुत संतोष हुआ। उस बुढ़ापे में भी वे बैलगाड़ी के हिचकोले सहते-सहते अपने नाती का मुँह देखने के लिए पहुँचे। पिता ने कहा—"तुम्हारी मा की जिन्दगी में ही हो गया होता तो उसे कितना संतोष होता। बेचारी तुम्हारे लिए सदा प्रार्थना करती रहती थी।"

"अम्मा तो जानती थीं, होगा ही—"—मैं बोली, "उन्हीं के आशीर्वाद से तो हुआ है।"

इनके उत्साह का तो अंत नहीं था। छठी के दिन इन्होंने गाँव भर की ज्योनार की। काली और जानकी ने आकर राँधने-पकाने में सहायता की। उस दिन तो कुन्ती भी आयी और लड़के को गोद में लेकर मेहमानों को दिखाती रही। हम लोगों ने मनों भात बनाया, केसरिया भात घी में भूनकर। गर्म मसाले डालकर दाल और तरकारियाँ बनायीं। खीर भी बनायी, मछली का झोल भी बनाया। दस हाँडी भर नारियल का पानी निकाला। एक पंडाल के नीचे केले के पत्तों की पत्तलें लगायी गयीं। आधी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रात तक खाना-पीना चलता रहा। लोगों ने बहुत कहा तो कुन्ती ने इकतारा बजाकर गाना भी सुनाया। कुन्ती गाना-बजाना अच्छा जानती थी। लोग तन्मय होकर सुन रहे थे। बच्चा दिन भर के गुलगपाड़े में तो चुपचाप सोता रहा। कुन्ती गा रही थी तो वह रोने लगा। कुन्ती ने इकतारा एक ओर रख दिया। सब लोगों ने मुझे घेर लिया और बच्चे को चुप कराने के लिए पुचकारने लगे, परन्तु वह मुँह फाड़े चिल्लाता ही जा रहा था।

"बाबा-रे-बाबा, कैसे चिल्ला रहा है!"—काली बोली, "देखो तो इसका गला।"

"सात साल इसकी राह देखी है।"—लड़के के बाप ने उत्तर दिया, "गला ऐसा नहीं होगा तो और क्या!"

मेरी बड़ी इच्छा थी कि दावत में डाक्टर साहब जरूर होते। उन्हें कई संदेश भी भेजे, उनका पता ही नहीं चला। बात मेरे मन में खटकती रही।

मुझे उदास देख इन्होंने पूछ ही लिया और फिर बोले—"कई संदेश तो भेजे, नहीं आ सके तो क्या हुआ।"

"मा के लिए डाक्टर साहब ने क्या नहीं किया!"—मैंने उत्तर दिया। और मन ही मन सोचा—और मेरे लिए जो किया! पर कह न सकी। डाक्टर के विषय में इनसे मैंने बात नहीं की थी। न जाने क्या समझते! सोचा था, अभी नहीं तो फिर बता दूँगी। बताने का अवसर कभी आया नहीं। बहुत दिन बीत गये तो सोचा, कहेंगे तब क्यों नहीं बताया था। सो बात कभी न कही जा सकी।

❀ ❀ ❀

हम-जैसे लोगों के यहाँ सबसे पहले हुआ बाल-बच्चा ही भागवान् होता है। दो, तीन, चार हो जाने पर तो हिस्सा बाँटकर ही सबका पेट भरना होता है। इरा अकेली थी तो उसे दूध घी चावल की कमी नहीं थी।

36011

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्जुन पहला लड़का था, इसलिए उसके लिए भी किया ही गया। इसके बाद तो हिस्सा-बाँट करके ही सबका निर्वाह करना पड़ा। बाद में मेरे चार लड़के और हुए — थांबी, मूरु, राजा और सिलवा। सात वर्ष सन्तान के लिए भगवान् से जो प्रार्थनाएँ की थीं उनके पूर्ण होने में कोई कमी नहीं रह गयी थी। भाग्य अच्छा था, इसलिए सभी बच्चे तन्दुरुस्त थे। बच्चों की देखभाल में इरा बराबर का हाथ बँटाती थी। बच्चों को सँभालने की सूझ उसे बड़ी बूढ़ियों से भी अधिक थी।

बच्चे कब बढ़ जाते हैं, पता भी नहीं चलता। अभी देखो तो बच्चे हैं, खटका सुनकर पल भर को आँख दूसरी तरफ गई, घूमकर देखा तो नौजवान।

इरा नन्हीं थी तो धूप में बिना कपड़े के भागती और खेलती रहती। पाँच बरस की हो गयी तो एक दिन इन्होंने कहा—"इसे कुछ पहनाओ-ओढ़ाओ।"

मुझे लगा, ये क्या कह रहे हैं, अभी तो यह बच्ची ही है। सोचा तो देखा ठीक ही कह रहे हैं। एक रंगीन फूलदार कपड़ा लाकर लड़की के लिए एक लहंगा सी दिया। इरा ने बड़े चाव से उसे पहना और पहनकर खूब फुदकती-नाचती फिरी। जब मन भर गया तो उसने लहँगा उतार फेंका। कपड़ा पहनने से उसे उलझन लगती थी। बड़ी कठिनाई से महीना भर समझा-समझा कर उसे कपड़ा पहनना सिखाया। छः बच्चे हो गये तो घर की बगिया की सब तरकारी घर में ही खपा नहीं सकते थे। सप्ताह में एक दिन मैं छाँट-छाँट कर एक टोकरा भर लेती। कटी-फटी और घटिया चीजें घर के लिए छोड़ देती। टोकरे को पत्तों से ढककर बाजार ले जाती। बुढ़िया सदा ही कुछ-न-कुछ खरीदती थी, इसलिए मैं सबसे पहले गली के पहले सिरे पर उसी के यहाँ जाती। बुढ़िया अपनी रूखी कड़ी उँगलियों से ताजे-चमकीले बैंगन-काशीफल और ताजी मिर्चें चुन लेती और खूब सराहती कि इतनी अच्छी ताजी तरकारी तो कभी नहीं देखी। सम्भव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, वह सभी की ऐसी ही सराहना करती हो, परन्तु मुझे बहुत संतोष होता। और मैं टोकरा सिर पर उठा मुस्कराती हुई चल देती।

एक दिन बिसवास महाजन ने मुझे बाजार में रोक लिया। साहूकार महाजन से बात करना किसे अच्छा लगता है! परन्तु बिसवास ने रोक ही लिया——

"अरे रुकमनी, ऐसी क्या जल्दी है सुनो तो।"

"जल्दी ही है मालिक, जानते हो छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर आयी हूँ।"—मैंने विनय से उत्तर दिया।

"ठीक कहती हो, पर तुमसे काम-काज की बात है।"

"क्या काम-काज की बात है मालिक?"

"अरे तेरा काम खरीदना-बेचना है।"——बिसवास मुस्करा कर बोला "हमारा काम उधार देना है।"

"मैं समझी नहीं मालिक।"——मैंने कहा, "काम-काज की बात है तो सीधे-सीधे कहो, नहीं तो मैं चलूँ।"

"अरे तरकारी की ही बात कह रहे हैं।"——बिसवास बोला, "तुम बुढ़िया के हाथ बेच डालती हो, बुढ़िया क्या दाम देती है?"

"ठीक ही देती है।"——मैंने उत्तर दिया, "बेचारी भाव-तोल नहीं करती।"

"सुनो हम चार आने में बारह बैंगन लेंगे और काशीफल बड़ा होगा तो छः आने देंगे।"——बिसवास बुढ़िया से दूने दाम दे रहा था।

अगले सप्ताह सब तरकारी मैंने बिसवास के ह थही बेच डाली। बुढ़िया के लिए थोड़ी-सी बचा ली। बिसवास ने दाम ज्यादा दिये, परन्तु उसके हाथ बेचना मुझे अच्छा नहीं लगा। उससे कोई हँसी-मजाक नहीं हुआ। उसने भी तरकारियों की कोई प्रशंसा नहीं की जैसे, बुढ़िया करती थी।

मैंने झेंपते हुए बुढ़िया से क्षमा-सी माँगी——"क्या करें, गरीब आदमी हैं, खर्चा नहीं चलता। घ र में ही लग गई।" वह भी मुस्कराकर रह गयी। उसने बुरा नहीं माना। हर बार मैं उसके लिए एक छोटा-सा काशीफल और चार-छः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बैंगन ही ले जाने लगी तो वह कैसे न भाँपती, परन्तु उसने कहा कुछ भी नहीं। सह जानती थी कि मैं सस्ता बेच नहीं सकती। मैं जानती थी कि बुढ़िया महँगा खरीद नहीं सकती। घर में हालत अच्छी नहीं थी। जैसे-तैसे रह रही थी। सबसे छोटे बच्चे के लिए तो दूध लेना ही पड़ता था। घी, दही कभी तीज-त्योहार के दिन ही जुटा पाते। खाना दो जून का जरूर हो जाता था। कुछ लोगों के लिए वह भी दूभर था। हमारे यहाँ नारियल और केले के अपने पेड़ थे। फसलें अच्छी हो रही थीं। खाने भर को दाल-भात हो ही जाता था। धान के खेतों में मछली भी मिल जाती थी। मैं हर महीने रुपया दो रुपया बचाकर रख ही लेती। इसका ब्याह भी तो करना था। हम संतुष्ट ही थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[४]

परिवर्तन तो मैंने पहले भी देखा था। पिता गाँव के चौधरी थे। मेरे देखते-ही-देखते वह कुछ भी न रहे। यह परिवर्तन बहुत बरसों में शनैः-शनैः हुआ। यह पता नहीं चला, कब और किस दिन हुआ। मेरे देखते-देखते माता-पिता बूढ़े हुए और उनकी मृत्यु भी हो गयी। यह भी इतना शनैः-शनैः हुआ कि उसका झटका अनुभव नहीं हुआ। परन्तु उस समय हमारे जीवन में और हमारे गाँव के जीवन में जो परिवर्तन आया उसने पल मारने में हमारे जीवन को उलट-पलट दिया।

अर्जुन भागता हुआ आया। वह गाँव से सरपट भागता हुआ चला आ रहा था। उसकी साँस चढ़ी हुई थी। बोल नहीं पा रहा था। दम लेकर भी उसने हाँफते-हाँफते कहा—"सैकड़ों आदमी आकर मैदान के साथ की झोंपड़ियाँ गिरा रहे हैं। ईंटों से भरी सैकड़ों बैलगाड़ियाँ आयी हैं।"

दूसरे बच्चों ने अर्जुन को घेर लिया। वे सब विस्मय से उसकी ओर देख रहे थे। अर्जुन ने फूलकर कहा—"मैं फिर जा रहा हूँ। कोई मामूली बात थोड़े ही है।"

अर्जुन के पिता धान तौल-तौल कर बोरियों में भर रहे थे। उन्होंने कहा—"चमड़े का कारखाना बनेगा वहाँ। मैंने पहले भी सुना था।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्जुन दुविधा में था। वह तमाशा देखने के लिए भी जाना चाहता था और बाप के मुँह से समाचार भी जानना चाहता था। बेचारे के पाँव गाँव की ओर जाने को चाहते थे, परन्तु आँखें पिता के चेहरे की ओर लगी हुई थीं। उसके पिता चुपचाप धान तौल-तौल कर बोरियाँ भरते रहे। काम निबटाकर खड़े हुए तो बोले—"आओ चलें, देखें क्या हो रहा है।"

खबर गाँव भर में आग की तरह फैल गई। सब लोग बाहर निकल आए। काली और उसका पति, कुन्ती और उसके लड़के और जानकी अपने सभी बाल-बच्चों समेत चल पड़ी। और तो क्या, बुढ़िया भी न रह सकी। बच्चे उत्तेजित होकर आगे-आगे चल रहे थे और पीछे रह जाने वालों को पुकारते जा रहे थे। कुत्ते भी उत्तेजना से प्रभावित होकर भौंकने लगे। गाँव की भीड़ ईंटों से लदी बैलगाड़ियों के पास जा खड़ी हुई। वे लोग बोली तो हमारी ही बोलते थे, परन्तु बोलने का ढंग दूसरा था। बात समझ में न आती थी।

"शहर के लोग हैं।"—काली ने मेरे कान में कहा, "कह रहे हैं सौ मील चलकर यहाँ पहुँचे हैं।" काली की आदत थी—बात बढ़ाकर कहती थी और अपने मन में उसी को सच भी मान लेती थी।

उन लोगों का अफसर भी देशी आदमी ही था। वह अपनी ही बोली बोलता था। कमीज और पतलून पहने था। सिर पर अँग्रेजी टोपी जैसे डाक्टर कैनी साहब पहनते थे। दूसरे लोग कमर में अँगौछे और सिरों पर पगड़ियाँ बाँधे थे। किसी-किसी के शरीर पर कुर्ता या बंडी भी थी, परन्तु जब वह काम में लग गये तो सभी ने कुर्ते और बंडियाँ उतारकर एक ओर रख दीं।

मजदूर लोग फुर्ती से काम कर रहे थे। बीच-बीच में हम लोगों की ओर देखते भी जाते थे। हम लोगों को विस्मित और आतंकित देखकर उन्हें अभिमान-सा हो रहा था। उनका जमादार बायें हाथ हिला-हिला कर ऊँचे स्वर में हुक्म दे-दे कर अपना रोब प्रकट कर रहा था। गर्मी उसे भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लग रही होगी। उसकी कमीज पसीने से चिपक रही थी और वह बार-बार टोपी उठाकर अपने सिर को हवा लगा लेता था।

हम लोग भीड़ के बीचों-बीच दबे हुए थे। किनारे पर भीड़ छँटने लगी। देखा कि लोग सफेद टोपी पहने एक खूब लम्बे व्यक्ति के लिए मार्ग देते जा रहे थे। साहब के साथ नेकरें और टोपियाँ पहने दो-तीन आदमी और भी थे। जमादार लपकता हुआ आया और उसने झुककर साहब को लंबी सलाम की। साहब ने जल्दी-जल्दी, परन्तु इतने धीमे स्वर में जमादार से कुछ कहा कि हम लोग समझ भी न पाये। जमादार ने साहब को फिर सलाम किया और हम लोगों को सम्बोधन करके बोला—"तुम सब लोग जाओ। मजदूरों को काम करने दो।"

हमें उसकी बात से विस्मय ही हुआ। वह हम लोगों को हमारे अपने गाँव से, हमारे मैदान से चले जाने के लिए कह रहा था।

"वाह रे! जैसे यह हमारा मालिक हो।"—कन्हाई चमार बोला। मानो बेचारे को अपने पेट पर पड़नेवाली चोट की आशंका पहले ही अनुभव होने लगी थी। वह गाँव में मर जानेवाले ढोरों का चमड़ा उतारकर कमाता था और चप्पलें बनाकर निर्वाह करता था। कन्हाई ने जमादार की परवाह नहीं की। क्रोध में अड़कर खड़ा रहा। कई दूसरे लोग भी उसके साथ खड़े रहे, परन्तु अधिकांश लोग अपना काम सँभालने और बखेड़े में न पड़ने के लिए चल दिये। दो मास तक ईंट पत्थर, सीमेंट-टीन की चादरों और दूसरे सामान से भरी गाड़ियाँ आती रहीं। पड़ोस के गाँव के भट्ठे लगातार ईंटें बनाते रहे थे, परन्तु उससे पूरा न पड़ रहा था। दूर-दूर से ईंटें आ रही थीं। गाँव में औरतें रात-रात भर रस्सियाँ बँटती रहतीं। वे जितनी भी बँट पातीं, बिक जातीं। मजदूरों के आ जाने से गाँव में खूब सौदा बिकने लगा। दुकानदारों की खूब बन आयी। मजदूरी अच्छी मिल रही थी। दो-दो रुपए रोज तक मिल जाते। इससे पहले हमारे यहाँ इतनी मजदूरी किसी ने नहीं सुनी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थी। लोग दाल, चावल, तरकारी, मिठाई, फल सभी कुछ खरीदते।

मजदूरों ने मैदान को घेरकर अपनी झोपड़ियाँ बना लीं। अपने बाल-बच्चों को भी ले आये। उन लोगों की अपनी बस्ती अलग बस गयी। दिन भर इमारती काम का और मजदूरों के चीखने-चिल्लाने का गुलगपाड़ा मचा रहता। कभी वे लोग मिल कर बड़ी-बड़ी शहतीरें छत पर चढ़ाते या कोई बोझ खींचते तो उनके "हैया हो" की ललकारें सुनायी देती रहतीं और रात में उनकी झोपड़ियों के सामने जलती आग दिखाई देती।

टेनरी (चमड़े के कारखाने) की इमारत पूरी हो गयी तो मजदूर अपनी गठरी-मुठरी उठाकर चल दिये। उनकी झोपड़ियाँ पीछे खाली पड़ी रह गयीं। चारों ओर सन्नाटा छा गया। उस सन्नाटे से आतंक-सा अनुभव होने लगा कि अब क्या होनेवाला है। दस-पन्द्रह दिन बीत गये तो आतंक मिट गया। हम लोग इमारत में जाकर इधर-उधर बनी कोठरियों और हौदों को देखने लगे। फिर लोग अपने काम-काज में इमारत को भूल गये।

गाँव के दूकानदारों को मजदूर-बस्ती का उजड़ जाना बुरा लगा। हम लोगों को उनके चले जाने से आराम ही मिला। उन लोगों ने हमारे बच्चों के खेलने की जगह छीन ली थी और दाम भी बहुत बढ़ा दिये थे।

अर्जुन के बाप ने कहा—"घबराओ नहीं, वे फिर लौट आयेंगे नहीं, तो उनकी जगह दूसरे आ जायँगे। उसमें अपना लाभ ही है। हमारी तरकारी अच्छे दामों में बिकेगी।"

"बिकेगी तो क्या मिल जायगा ?"—मैंने उत्तर दिया, "सभी कुछ उतना ही महँगा भी तो हो जायगा।" जब से यह लोग आये हम लोग तो कभी दाल, घी, चीनी कुछ खरीद नहीं पाये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"वे लौटकर तो जरूर आयेंगें। इतनी बड़ी इमारत है। पड़ी रहने के लिए तो बनाकर छोड़ नहीं गये हैं।"

"भगवान् करे, न ही आयें।" मेरे मुँह से निकला, "हम लोगों की तो मुसीबत ही होगी। बच्चों को कुछ खाने को मिलेगा नहीं। उन्हीं के बच्चे सब कुछ खा जायँगे। रुपया-पैसा जो कुछ मिलेगा उससे खरीद तो कुछ पायेंगे नहीं। भगवान् उनसे बचाये।"

"तुम बड़ी नासमझ हो।"—इन्होंने कहा—"यह हमारे रोके रुकेगा नहीं। जैसे जिन्दगी कटती है वैसे काटो।"

बच्चे हम लोगों की बात सुनकर हैरान हो रहे थे। तीनों लड़के एक साथ बैठे हमारी ओर देख रहे थे। दोनों छोटों को इरा दीवाल से टेक लगाये संभाले बैठी थी। एक उसकी गोद में सो रहा था, दूसरा उसके घुटने पर सिर रखे था। इरा भी चकित होकर हम लोगों की ओर देख रही थी। बच्चों की घबराहट मुझे अच्छी नहीं लगी। बात टालने के लिए मैंने कहा—"अच्छा जाने भी दो, घबराने की क्या बात है? वह लोग आ ही जायँगे तो हम भी पैसा कमायेंगे और लड़की के लिए दहेज हो ही जायगा। यही क्या कम है!"

मेरी बात से इरा को सान्त्वना मिली। तेरह वर्ष की हो गयी थी तो क्या, थी तो बच्चा ही। धूमधाम से ब्याह होने की कल्पना करने लगी होगी। मैं भी तो ऐसे ही कल्पना करती थी।

❀ ❀ ❀

मजदूर लौटकर आने लगे। यह दूसरे ही लोग थे। साहब भी लौट आया। उसके साथ एक जमादार भी था। साहब गाँव में बसा नहीं, आता-जाता रहता था, लेकिन मजदूर वहीं बस गये। इस बार पहले की अपेक्षा अधिक मजदूर आये; अपने बाल-बच्चों को भी साथ ले आये। झोपड़ियों के लिए मैदान में जगह न रही तो पानी के नाले के किनारे ही बसने लगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मजदूरों की बस्ती से शोर और उनके राँधने-पकाने और शराब की गंध उठती रहती थी। गनीमत यही थी कि उनकी बस्ती हमारे घर से जरा परे ही थी।

"तुम लोग भी क्या आदमी हो !" कुन्ती ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा, "गाँव की बस्ती बढ़ गयी है तो अच्छा ही है। दुकानें आ जायँगीं, चाय मिलने लगेगी, बाइस्कोप का तमाशा भी आ जायेगा। तुमने तो कभी देखा नहीं। ब्याह से पहले मैंने तो शहर में कई बार देखा है।"

"हमें तो यह नहीं सुहाता।"—मैंने उत्तर दिया, "सड़ान के मारे दम घुटा जाता है। बच्चे उधर से जाते हैं तो नाक दबाकर जाते हैं। पक्षी भी डर के मारे भाग गये। अब तो उनका बोल भी नहीं सुनाई पड़ता।"

"तुम निरी दिहातिन हो।"—कुन्ती नाक सिकोड़कर बोली, "तुम इन बातों को क्या समझो !"

हम लोग दिहाती ही थे। हम लोगों में से किसी को भी—न काली को' न जानकी को—मजदूरों की भीड़ नहीं सुहाई, परन्तु कुछ दिन बाद जानकी कहने लगी—"अच्छा है हीभाई। लड़के मजदूरी तो कर लेंगे। हम लोगों के यहाँ इतने खेत जमीन कहाँ हैं?" काली को भी अच्छा लगने लगा। उसे गप्प हाँकने के लिए संगत की कमी नहीं रही। वे लोग पुरानी बातें भूल, नयी का चाव करने लगे, परन्तु मुझे यह सब अच्छा नहीं लगा। मैं बीते दिनों को ही याद करती रही।

सबसे पहले हमारी बेटी के लिए ही संकट आया। अब तक लड़की अपने भाइयों के साथ जहाँ चाहे जैसे घूमती फिरती थी। एक दिन काली ने मुझे चेतावनी दी—

"लड़की को सँभाल कर रखो। देखती नहीं हो, छोकरे उसे कैसे घूरते हैं। उसकी उमर भी तो हो आयी है। पछताना न पड़े। लड़की को ब्याहना दूभर हो जायगा।"

"लड़की की अभी उम्र ही क्या है !"—इरा के पिता ने कहा, "और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसकी ओर आँख तो मर्द और औरत सभी की उठती है, रूप जो है!"

"रूप है, मानती हूँ।"—काली बोली, "तभी तो ख्याल रखने को कह रही हूँ।"

काली को तो हम लोगों ने उत्तर दे दिया, परन्तु लड़की पर आँख भी रखने लगे। लड़की रोक-टोक से घबराने लगी। मुँह से बेचारी कुछ नहीं बोली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[५]

वर्षों से हम लोग खेत-जोत रहे थे, परन्तु जमीन के मालिक जमींदार के कभी दर्शन नहीं हुए थे। जमींदार के कारिन्दे शिवजी से ही सामना होता था। हमारे भाग्य से शिवजी भला आदमी था। दूसरे कारिन्दों की तरह, लगान पूरा चुका न पाने पर फसल उठा ले जाना या रिश्वत में अनाज या रुपया माँगना यह सब शिवजी नहीं करता था। दूसरे कारिन्दे खेतों से गोबर उठवाकर अपने लिए उपले बनवा लेते थे। शिवजी यह भी नहीं करता था। हाँ, उसने हम लोगों के दिन बाँध दिये थे। एक दिन काली खेतों से गोबर बटोर लेता, दूसरे दिन मैं। इससे हम लोगों में झगड़ा भी न हो पाता। एक दिन सुबह ही अभी ओस नहीं सूखी थी, न टेनेरी में काम आरम्भ हुआ था कि मैं खेतों से गोबर बटोरने चल दी। उपलों के दाम बढ़ गये थे। सुबह जल्दी जाने में ही भला था, नहीं तो छोकरे आकर गोबर उठा ले जाते। एक-दो बार छोकरों को गोबर उठाते देखा तो उन्हें ललकारकर भगा दिया, परन्तु गोबर तो हाथ न लगा।

उस दिन खेतों में गोबर बहुत था। मेरी डलिया भर गयी थी। मैं आखीर का छोप उठा रही थी तो जान पड़ा कि पास कोई खड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"गरीब कहाँ हो!" साहब ने उत्तर दिया। "लक्ष्मी जैसी बहू है तुम्हारी—पाँच बेटे हैं।"

मैं मन-ही-मन घबरा रही थी कि साहब कह न दें कि यह बेटे उन्हीं की कृपा से थे। मन-ही-मन पछता भी रही थी कि बेटों के बाप से अब तक यह बात क्यों नहींकही

❀ ❀ ❀

डाक्टर साहब हमारे यहाँ प्रायः आने लगे। वे अपनी या अपनी घर-वाली या बाल-बच्चों की बाबत कुछ नहीं कहते थे। इस ख्याल से कि कहीं बुरा न मान जायँ, मैंने भी कभी नहीं पूछा। बच्चों को वे बहुत चाहते थे। हमारे बच्चे भी उनकी राह तकते रहते। साहब उनके लिए कभी नारियल का टुकड़ा ले आते, कभी रामदाने के लड्डू। एक दिन साहब आये तो मैं सबसे छोटे सिलवा को दूध पिला रही थी। सिलवा तीन वर्ष का हो गया था। साहब ने देखा कि बच्चे के चूसने से मेरी छाती सूज रही थी।

"लड़का बड़ा हो गया है।"—साहब ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा, "इतने बड़े लड़के को कहीं दूध पिलाया जाता है!"

"मालिक बकरी तो बेच डाली गयी।"—मैंने उत्तर दिया, "बाजार से दूध कहाँ खरीद पाते हैं। इसे दूध तो अभी चाहिए, सो मैं ही पिला देती हूँ।"

इसके बाद डाक्टर जब भी आते, थोड़ा गाय का दूध ले आते या किसी बच्चे के हाथ भिजवा देते। बच्चे उन्हें सदा घेरे ही रहते थे और उनका कहा करने से बहुत खुश होते थे।

डाक्टर साहब कभी आ जाते और कभी कई दिन तक दिखायी ही न देते। हम लोग यही जानते थे कि डाक्टर साहब टेनेरी के मजदूरों को दवा-दारू देते हैं और फिर कहीं दूर अपनी कुटिया में चले जाते हैं। जब वे महीनों के लिए अंतर्द्धान हो जाते तो किसी को उनका कुछ पता न चलता। जब वे लौटकर आते तो बहुत चुप-चाप से दिखाई देते। हमें उनसे कुछ पूछने का साहस न हो पाता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[६]

जब तक बना, हम लोग इरा का ब्याह टाले रहे, परन्तु जब चौदह की हो गयी तो और ठहरना सम्भव न रहा। अच्छे लड़कों पर सभी की नजर रहती है। चूक जाने पर लड़की के लिए वर ढूंढ़ पाना दूभर हो जाता है। इरा की आयु की सभी लड़कियाँ ब्याही जा चुकी थीं या सगाई तो हो ही की थी। चुपही सोच रहे थे कि संबंध की बात उठाने के लिए किससे कहें। यों तो काली पड़ोस में ही थी और बिना कहे ही सब कुछ करने को तैयार थी, परन्तु उससे डर भी कम नहीं था। उसके चुने लड़के को न मानें तो वे झगड़ा खड़ा कर देते। उसके अपने भी लड़के थे। उन्हीं में से किसी का नाम सुझा देती तो और मुसीबत। उन लोगों के यहाँ खेता जमीन कुछ भी नहीं था। मुझे बुढ़िया दादी का ही सबसे अधिक भरोस- था। वह अनुभवी, समझदार और स्वभाव की गम्भीर थी। परन्तु इधर वर्षों से उससे कोई संबंध नहीं रहा था। मेरे मन में आशंका थी कि मैं उससे कहूँ और वह इनकार कर दे तो अच्छा नहीं लगेगा। आखिर बुढ़िया के पास ही जाना पड़ा।

"सौ रुपये तक दहेज में भी दे देंगे।" मैंने कहा, "लड़की तो तुमने देखी ही है, फूल-सी है। इस समय तुम्हारा ही भरोसा है। उम्र भर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुम्हारा यश मानूँगी।" और मैंने लजाते हुए क्षमा-सी माँगी,—"क्या करूँ, इस पेट के लिए ही सौदा बिसवास के हाथ बेचना पड़ता है।"

"रुक्मिनी, मुझे तुझसे कोई लड़ाई थोड़े ही है"—बुढ़िया ने कहा, "क्या देखती नहीं हूँ मैं, कैसा जमाना आ गया है। अपना और बच्चों का पेट पालना दूभर हो रहा है। तू भरोसा रख, मुझसे जो बनेगा, तेरे लिए करूँगी।"

बुढ़िया छठे-सातवें किसी-न-किसी लड़के की बात लेकर आती। मैं और इरा के पिता घंटों बैठकर लड़के के संबंध में आगा-पीछा सोचते रहते। आखिर एक लड़के पर बात ठहर गयी। लड़का नौजवान था, अपने बाप की जमीन का इकलौता वारिस।

"वह लोग दहेज भी तो भारी मागेंगे।"—मैंने सहमते हुए कहा, "ऐसा लड़का सौ रुपये में क्या मानेगा! जानती हो, वह अपने बस का नहीं।"

"और लड़की नहीं क्या हजारों में एक है!"—बुढ़िया बोली, "दहेज कम सही, पर वे लोग मान जायँगे।"

महीने भर में ही फलदान हो गये और लगन निश्चित हो गयी। इरा को भाइयों से बिछुड़ने का दुःख तो था, परन्तु वह बेचारी बोली नहीं। उसने केवल इतना ही पूछा कि मैं इसे देखने तो आया करूँगी न?

इरा की ससुराल नजदीक नहीं थी। कम-से-कम बीच में दस गाँव पड़ते थे। उसे ढाढ़स बँधा दिया। क्या कहती है, साल में दो-तीन बार तो तुम्हें देखने जाऊँगी ही। मन में जानती थी कि ऐसा हो नहीं पायेगा और समझाया—

"तेरा अपना घर हो जायगा तो तू कौन हमीं लोगों को याद करती रहेगी! तेरा अपना घर होगा, तेरे भी बाल-बच्चे होंगे, तुझे फुरसत ही कहाँ मिलेगी हम लोगों को याद करने की!"

इरा सिर झुकाकर रह गयी, बोली नहीं, पर उदासी नहीं छिपा सकी। मुझे भी लड़की की उदासी से दुःख हुआ। मैं जानती थी कि लड़की ससुराल में जाकर रँग तो जायगी ही, परन्तु मायके का बिछोहा, ससुराल में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाकर नये आदमियों में घबराहट भी होगी ही, मगर इसका उपाय क्या था !

विवाह का दिन भी आया। गाँव की स्त्रियाँ सहायता के लिए आ गयीं। जानकी और काली आयी। और दूसरी कई स्त्रियाँ भी, जिनसे पहले परिचय नहीं था। हम लोग इरा को नहलाने के लिए गाँव के नाले पर ले गयीं। उसे नहलाकर वही लाल साड़ी पहनाई जो मैंने विवाह के समय पहनी थी। उस भारी साड़ी में लड़की और भी दुबली, बिलकुल बच्ची-सी दिखाई देने लगी। उसकी आँखों में काजल लगाया तो वह और भी छोटी जँचने लगी। उसे देखकर मेरे मन को लगा, हाय ! क्या यह अभी व्याहने लायक है !

बारात आयी। दो-तीन बाजेवाले आ गये थे, एक शहनाईवाला भी आ गया। मन तो चाहता था कि खूब बाजा बजता, परन्तु उतना पैसा कहाँ से देते। इरा के बाप ने कह दिया था, जो भी हो, कर्जा नहीं लेना है, पर मेरा मन नहीं मान रहा था। मेरे एक ही तो लड़की थी। मैंने इरा के जन्म-दिन से ही उसके व्याह के लिए जोड़-जोड़ कर रखा था, सो अब चावल, दाल, घी, तेल की हंडिया, गुड़, सुपारी और तम्बाकू तथा नारियल सब कुछ निकाल दिया।

"तुमने इतना जोड़ रखा था !"—इरा के बाप ने विस्मय से कहा।

"इतने से सरेगा भी !"—मैंने दूसरी स्त्रियों मुस्कराकर कहा—

"मर्दों को क्या समझ होती है, वह तो बच्चों की तरह सब कुछ खर्च कर डालना चाहते हैं।"

मैं बाजेवालों की ओर अर्जुन को बुलाने चली गयी थी। इरा के बाप ने कुछ कहा तो सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। मैं सुन नहीं सकी। अर्जुन बाजेवालों के साथ मिलकर ढोल बजा रहा था। मैंने उससे कहा—

"तू भीतर जाकर कुछ खा तो ले, फिर समय नहीं मिलेगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्जुन ढोल छोड़ना नहीं चाहता था, परन्तु मैंने उसे बाँह पकड़कर उठा लिया और भीतर ले गयी।

बाजे बजने लगे। दूल्हा-दुलहिन को पास-पास बिठा दिया गया। वे दोनों आपस में बच-बच कर बैठे थे। इरा कढ़ी हुई भारी साड़ी में सिमटी बैठी थी। उसके केशों में श्वेत फूल गुँथे हुए थे। उसका चेहरा भयभीत और उदास था। दूल्हे-दुलहिन के चारों ओर दस-पन्द्रह आदमी घिर आये थे। कोठरी में और जगह नहीं थी। शेष लोग आँगन में चटाइयों पर बैठ गये थे।

कोई दूल्हे को सराहता, कोई दुलहिन के रूप की प्रशंसा करता। सभी कह रहे थे कि जोड़ी लाखों में एक है। बुढ़िया इठलाती फिर रही थी। यह सब उसी का किया था। संबंध मिलाने की उसकी ख्याति बढ़ रही थी; परन्तु भविष्य के विषय में कोई भी कुछ नहीं कह सकता था।

ब्याह हो गया, बाहर अँधेरा भी हो गया था। दो जवानों ने एक पालकी लाकर कोठरी के दरवाजे के सामने लगा दी। विदाई का समय आ गया जानकर इरा का मुख और भी उदास हो गया। उसके पाँव पालकी की ओर नहीं बढ़ रहे थे, परन्तु दस-पन्द्रह हाथों ने उसे उठाकर पालकी पर रख दिया। लोगों के पेट स्वादिष्ट भोजन से और हृदय सद्भावनाओं से भरे थे। सभी उत्साहित और उत्तेजित थे। सब लोग एक-दूसरे को धकेलकर वर-वधू को मालायें पहनाने लगे। चारों ओर फूलों की पंखुड़ियाँ फैल गयीं। इरा के बाप ने आगे बढ़कर उसे आशीर्वाद दिया। पालकी उठ गयी। मशालची पालकी के आगे हो गये और बाजेवाले पीछे। उनके पीछे हम लोग, हमारे संबंधी, मित्र-पड़ोसी और फिर तमाशा देखनेवाले थे। हँसते-बोलते पाँव पैदल चलने लगे। अच्छा-खासा जलूस बन गया।

खेतों को पारकर जलूस गाँव की गलियों में से होकर चला। आगे-आगे पालकी डगमगाती चाल से चली जा रही थी। वर-वधू के इतनी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूर तक पालकी पर चढ़ लेने की रीति काफी थी। आगे उनके लिए एक बैल-गाड़ी प्रतीक्षा कर रही थी।

वर-वधू बैलगाड़ी पर बैठ गये तो कोलाहल समाप्त हो गया। संबंधी और मेहमान चल दिये और मेला समाप्त हो गया। हम लोग भी घर लौट आये। इरा के भाई बहुत थक गये थे। वे सब एक तरफ लेटकर सो गये। सबसे छोटे की चिपचिपाती मुट्ठी में अब भी मिठाई का एक टुकड़ा था। घर में सभी जगह जूठन बिखरी हुई थी। लोगों की ठेलमठेल से भीतों पर से भी जगह-जगह मिट्टी गिर गयी थी। मैंने झाड़ू लगाई। कुम्हलाये हुए केले के पत्ते एक ओर समेट दिये कि बैल खा लें। पौ फटने में देर नहीं थी, मैं थकान से चूर होकर लेट गयी, सोचने लगी—इरा इसी घर में जन्मी थी। आज पहला दिन था कि वह घर में नहीं सोई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[७]

प्रकृति को तो हाथी के समान ही समझो। उसे सधा लिया जाय और आदमी चौकस रहे तो उससे मनमाना काम लिया जा सकता है, परन्तु जरा चूक हुई तो सर्वनाश भी कर सकता है।

इरा का ब्याह जेठ महीने में हुआ था। ब्याह-कार्य के लिए यही महीना शुभ होता है। लड़की के ब्याह से पहले फुरसत कहाँ थी और लड़की के विदा हो जाने पर मन ऐसा उदास हो गया कि कुछ करते न बना; न तो छप्पर का छाजन ही बरसात से पहले ठीक कर पाये और न धान के खेतों में मेड़ ही बाँध सके। उस साल वर्षा भी समय से बहुत पहले और इतने वेग से आयी कि पहले कभी देखा-सुना नहीं था।

पहली ही बरसात इतने दिन की हुई कि बाद में सूखा पड़ जाने की आशंका होने लगी। सब ओर पानी-ही-पानी था। छप्पर की दीवालों में सील चढ़ गयी और छाजन से भीतर सभी जगह पानी टपक रहा था। हमारा घर किसी नीची जगह होता तो दीवालें कभी की घुल गयी होतीं। घर में जितने बर्तन-बासन थे सब टपकन के नीचे रख दिये। छाजन नयी जगह टपकने लगा।

भाग्य से इरा के ब्याह के लिए जोड़े हुए ईंधन में से कुछ बच रहा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

था। उसी को जलाकर भात बना लेते। भीगी लकड़ियाँ सर-सर कर जलतीं तो चूल्हे के पास बैठकर हम लोग अपने कपड़े सुखा लेते। सब ओर भर गया पानी बच्चों के लिए अच्छा खिलवाड़ बन गया था। उन्होंने ऐसा कभी नहीं देखा था। वे किलकारियाँ भरकर पानी में छप-छप कर दौड़ते फिरते, परन्तु मेरा और अर्जुन के बाप का मन आशंका से डूबा जा रहा था। हमारे देखते-देखते पानी इतना बढ़ा कि धान के खेत डूब गये।

"जाने कैसी बरसात आयी है!"—अर्जुन के पिता चिन्ता से बोले, "सब कुछ बर्बाद हो गया, खायेंगे क्या।"

बाप की बात सुनकर अर्जुन रोने लगा। उसे देखकर थांबा भी रोने लगा। दोनों सयाने हो चुके थे और बात समझने लगे थे। उन्हें देखकर दूसरे बच्चे भी बिना कुछ समझे ही रोने लगे। अब तक बच्चे भी वर्षा से खिन्न हो चुके थे। दिन भर भीगे कपड़ों में बैठे रहना उनके लिए मुसीबत हो गया था। तिस पर भूख! पहले का बचाकर रखा हुआ इरा के ब्याह में लग गया था और नयी फसल अभी खेतों में ही खड़ी पानी में डूबी थी। मैंने बच्चों के बाप को चुप रहने के लिए कहा और बच्चों को चुप कराने की कोशिश की।

आठ दिन से लगातार पानी बरस रहा था। आठवें दिन रात आयी तो हवा और भी तेज हो गयी। आँधी हुँकार-हुँकार कर हमारे छप्पर को उखाड़कर फेंक देना चाहती थी। छप्पर के भीतर टिमटिमाते दिये का काँपता हुआ प्रकाश था, परन्तु बाहर लगातार लपलपाती हुई बिजली का लाल-पीला प्रकाश आँखों को चौंधिया रहा था। आधी रात तक अंधड़ का जोर बहुत बढ़ गया। बिजली की तड़क से आकाश चिथड़े-चिथड़े हो गया जान पड़ता था और उसकी कड़क से धरती का हृदय विदीर्ण हो रहा था। बाहर देखकर हृदय दहल जाता था। नींद तो क्या आती, भगवान् का नाम भी नहीं लेते बनता था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"घबराओ नहीं।"—इन्होंने कहा, "सुबह तक थम जायगा।" ये बोल रहे थे, तभी एक प्रचण्ड उजाला-सा हो गया और हम लोगों के कान बहरे हो गये। जब सुध आयी तो जाना कि हमारे नारियल के पेड़ पर बिजली गिरी थी।

❀ ❀ ❀

सुबह सब कुछ शान्त था। वर्षा रुक गयी थी। आठ दिन की वर्षा और पिछली रात के विध्वंस के पश्चात् वह शाँति भी भयावनी जान पड़ रही थी। मैंने पिछवाड़े जाकर तरकारी की बगिया को एक आँख देखा, पेड़ उखड़ गये थे और बेलें टूट गयी थीं। खेतों का कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता था, सब ओर पानी ही पानी था। बच्चे लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े ढूंढ़कर पानी में तैराने और खेलने लगे।

बहुत-से पड़ोसियों की अवस्था हमसे भी बुरी थी। कइयों के छप्पर उड़ गये थे, विचारों ने आँधी-पानी से बचने के लिए पेड़ों के नीचे शरण ली थी। बिजली गिरी तो उनमें से छः मर गये। पिछली रात की आँधी में काली का छप्पर उड़ गया था और भीतें बैठ गयी थीं।

काली बोली—"भगवान् की दया समझो कि आधी रात तक छप्पर बना रहा और उनकी दया से हम लोगों की जान तो बच गयी।" उसे इतना निराश और दुःखी जीवन में कभी नहीं देखा था।

काली नया छप्पर बाँधने के लिए नारियल के पत्ते माँगने आयी थी। इन्हें क्या उत्तर देती। मैंने—बिजली गिरकर जल गये अपने नारियल के पेड़ की ओर संकेत कर दिया। अब वह काले ठूंठ की तरह खड़ा था।

"हमें भी तो साँझ तक छप्पर छाना होगा।"—मैंने कहा, "बरसात का क्या भरोसा! चावल भी कहीं से लाना होगा।"

अर्जुन के बाप ने कहा—"मैं गाँव में जाकर देखूं कि नारियल के पत्ते और कुछ चावल मिल जायँ तो खरीद लाऊँ।"

यह कोठार में गये, वहीं एक कोने में हम लोग बचा हुआ पैसा एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हंडिया में गाड़कर रख देते थे। जब मैं दूल्हन बनकर इस घर में आयी थी, यह हंडिया भर गयी थी। अब केवल बारह ही रुपये थे।

"एक रुपया ले लो।"—मैंने कहा, "इतने में हो जायगा।"

"नहीं, दो लिये लेता हूँ, बच जायगा तो फिर रख देंगे।"

आँधी-पानी से गाँव भर में विध्वंस फैला हुआ था। बड़े-बड़े पेड़ उखड़ गये थे और अपनी टहनियाँ फैलाये बाजारों में पड़े थे। पेड़ों के नीचे दबकर कई मकान गिर गये थे। मलवे के नीचे मरे हुए स्त्री-पुरुषों के शरीर दबे हुए थे। सब ओर शहतीर और ईंट-पत्थर बिखरे हुए थे। टेनेरी की बड़ी, ईंट और सीमेंट की इमारत अब भी वैसे ही खड़ी थी, परन्तु मजदूरों की झोपड़ियों के छप्पर या तो उड़कर दूर जा पड़े थे, या धरती पर बैठ गये थे। कहीं केवल दीवालें खड़ी थीं और कुछ टूटा-फूटा सामान भी पड़ा दिखाई पड़ रहा था। टीन की चादर की झोपड़ियाँ तो सभी उड़ गयी थीं और टीनें दूर-दूर जाकर पड़ी हुई थीं। कई टीनें तो वृक्षों की टहनियों में जाकर उलझ गयी थीं। सभी ओर पानी भरा था, गाँवों की गलियों में नाले बह रहे थे और उनमें मरे हुए कुत्ते-बिल्लियों और चूहों के सड़कर फूले हुए शरीर तैर रहे थे। इस सर्वनाश में लोग अपनी उड़ी हुई और खोई हुई चीजों को देख रहे थे। सबके चेहरों पर निराशा थी।

"चलो लौट चलें।"—मैंने इनसे कहा,—"अभी क्या मिलेगा, फिर आयेंगे।"

हम लोग दोनों रुपये गाँठ में बाँधे घर लौट आये। हमें देखकर बच्चों के चेहरे आशा से चमक उठे। उन्होंने दौड़कर हमें घेर लिया। उन्हें समझाया कि गाँव में दुकानें अभी तक बंद हैं, बहुत-सी गिर गयी हैं, चलो तुम्हारे लिए दलिया राँध दूँ।

बच्चों के चेहरे निराशा से लटक गये। दोनों छोटे चीखकर रो पड़े। इनकी भूख भड़क उठी। उन्हें क्या कहती, क्या समझाती!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूरज डूबते-डूबते फिर बादल गरजने लगे। रात भर हमारे हृदय दहलते रहे, यही जान पड़ता था कि इस बार कुछ नहीं बचेगा। यह रात्रि ही कालरात्रि हो जायगी।

❀ ❀ ❀

पानी कुछ उतरा तो हम लोग फिर दो रुपये लेकर गाँव की ओर चले। अवस्था कुछ सुधर चुकी थी, बाजार और गलियों में लोग चल फिर रहे थे, लोग फिर से झ.पड़ियाँ बनाने लगे थे। देखकर साहस बँधा।

"चलो, पहले हनुमान की दुकान से चावल ले लें"।—अर्जुन के बाप ने कहा, "बिना अन्न के दलिये से प्राण कब तक बचेंगे।"

चावल का नाम सुनकर ही पेट में भूख की पीड़ा अनुभव होने लगी। हम लोग जल्दी-जल्दी चलने लगे।

हनुमान दुकान के दरवाजे पर ही खड़ा था। हमें देखकर हाथ उठा कर बोल उठा—"चावल लेने आये हो न, चावल तो सभी माँग रहे हैं। यहाँ घर के बाल-बच्चों के लिए पूरा नहीं पड़ रहा है।"

"तुम्हारा तो चावल का ही कारोबार है।"

"उससे क्या होता है भाई! धान तो तुम्हारे यहाँ ही होता है तो तुम खरीदने फिर आये हो? है भी तो बेंचेंगे नहीं। कह दिया तुमसे, हमारे पास नहीं है।"

"हमें कौन बहुत-से लेना है, नकदी दाम देंगे भैया।"

"नहीं भाई, चावल नहीं है। चावल लेना हो तो बिसवास के यहाँ जाओ, शायद वहाँ मिल जाय।"

हम लोग बिसवास के यहाँ पहुँचे। उसे नकदी दो रुपये दिखाकर ही कहा कि भई चावल चाहिये।

"दो रुपये का?"—बिसवास बोला, "दो रुपये का कितना चावल मिलेगा।"

हम लोग विस्मय से उसकी ओर देखकर बोले—"दो रुपये का……?"

"हाँ, हाँ। दो रुपये का।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बिसवास ऊँचे स्वर में बोला—"तुम्हें नहीं मालूम, चावल है ही नहीं। दो रुपये का सेर भर मिलेगा और यह भी तुम्हीं को दे रहा हूँ।"

"दो रुपये का सेर भर! क्या कह रहे हो!"

"तुम जानो। टेनेरी के लोगों को तो तीन रुपये सेर दे रहा हूँ। तुम गाँव के पुराने आदमी हो इसीलिए इतना लिहाज।"

दो रुपये का ही सेर भर लेना पड़ा। छप्पर के लिए पत्ते खरीदने को दाम नहीं बचे। खरीदते भी तो फिर दाम लेकर आना पड़ता।

मैंने चावल साड़ी के पल्ले में लेकर सँभालकर कमर में बाँध लिये। बाजार से बाहर निकले तो गाँव के किनारे डाक्टर कैनी दिखाई दिये। उनका चेहरा बहुत उदास था, हमें देख हमारी ओर बढ़ आये।

"तुम्हारे पास भी खाने को नहीं है क्या ?"—उन्होंने पूछा।

मैंने चावलों की पोटली छूकर कहा—"सेर भर खरीद लाये हैं। इससे गुजारा चलेगा तब तक अच्छा समय आ जायगा।"

"अच्छा समय आ जायगा ?"—साहब बिगड़कर बोले, "अच्छा समय तो कई महीने तक नहीं आयेगा। तब तक तुम भूख से मर जायगा। तुम लोग कैसा आदमी है ? भूखों मरता है, फिर भी नहीं बोलता, मदद भी नहीं माँगता। हे भगवान्, यह कैसा मुल्क है"

हम लोग सहम गये। समझ नहीं सके कि साहब किस बात से बिगड़ पड़े। हमारे वश में भी क्या था। हम लोग घर की ओर घूम गये।

❀ ❀ ❀

धान सब गिर गया था, अगली फसल तक चावल की कोई आशा नहीं थी। साल भर हम लोगों ने खेतों में भरे पानी में से मछलियाँ पकड़ कर, पेड़ों की जड़ें खोदकर, नरम पत्ते चुनकर और केलों के फलों पर गुजारा किया। आखिर धान की नयी फसल बोने का समय आ गया। खेतों के पानी में मछलियाँ भी खूब थीं। सोचा कि मछली पकड़कर सुखा कर रख लेंगे, महीने दो महीने उसी से कट जायँगे। एक दिन हम लोग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

टोकरियाँ और जाल लेकर खेतों में गये। मेड़ें तोड़कर पानी बाहरकर मछलियाँ पकड़ लीं। बच्चों के शरीर भूख से सूख गये थे। उनका हँसना-खेलना भी न रहा था। परन्तु इतनी मछली एक साथ पकड़ पाने की आशा से उनके चेहरे चमक उठे। हमने मेड़ों में छोटे-छोटे कटाव लगाकर पानी बहाया और उनके आगे जाल लगा दिया। पानी बह जाने पर खेतों में ढेर-की-ढेर मछलियाँ तड़पने लगीं। धूप में उनका उछलना-तड़पना बड़ा सुन्दर लग रहा था। फिर कहीं किनारों पर खड़ा बचा-खुचा धान भी काट लिया।

हम लोग आधी रात तक मछलियों को सहेजते रहे, धान को कूटकर चावल निकाला। दो-ढाई सेर चावल निकल ही आया। यही हमारी वर्ष भर की मेहनत की कमाई थी।

उस रात हम लोगों ने मछली और भात राँधकर खाया। कई दिनों बाद ऐसा ढंग का खाने को मिला था, इसलिए पेट में कुछ असुविधा भी जान पड़ रही थी। परन्तु आत्मा में शान्ति अनुभव हो रही थी। बच्चों के शरीर सूखे हुए ही थे, परन्तु पेट भर खाकर उनके चेहरों पर संतोष झलक रहा था। मेरे मन में तृप्ति थी। इतने दिन बाद खाने को मिला था और छः-सात दिन को और भी था। उसके बाद के लिए सूखी मछली थी। सोचा, तब तक बगिया में तरकारियाँ हो जायँगी। सुखद स्वप्न आँखों के सामने नाचने लगे। उस रात ऐसी मीठी नींद आयी कि जीवन में कभी न आयी होगी। चटाई पर लेटने से पहले बैठे-बैठे ही सो गयी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[८]

गाँव में सबसे पहले कुन्ती के लड़कों ने ही टेनेरी में मजदूरी की। दोनों छोकरों को मिलाकर पूरे जवान की पगार से अधिक मिल जाता था।

"देख लो भाई, हमने तो पहले ही कहा था।"—कुन्ती बोली, "टेनेरी खुली तो हम लोगों के भाग्य ही खुल गये समझो। अपना गाँव अच्छा-खासा शहर बना जा रहा है। हम लोगों का तो इसमें भला ही है।"

"तुम जानो, हमें तो कोई भलाई दीखती नहीं।"—मैं बोली, "अब रुपये में कुछ मिलता ही नहीं। ऐसे शहर से तो हम गाँव में भले थे। जिधर देखो हाय-हाय मची है। किसी को दूसरे का ख्याल ही नहीं रहता। जहाँ देखो उचक्के बदमाश भर गये हैं। किसी की इज्जत का ख्याल नहीं। कान बहरे हुए रहते हैं! जहाँ देखो भीड़!"

"तभी तो कहते हैं कि देहाती को अक्ल नहीं होती।"—कुन्ती ने उत्तर दिया, "इन बातों में क्या रखा है! अक्ल हो तो समझ में आये। हम कोई दिहातिन थोड़े ही हैं।"

"दिहातिन नहीं हो तभी ऐसी बात तुम्हरे मुँह से निकलती है।"—मुझे भी गुस्सा आ गया।

कुन्ती झमककर मुँह मोड़ अपनी छरहरी देह लचकाती चल दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह दिन-दिन भर कस्बे में मटकती फिरती थी। उसके सलोने चेहरे पर रीझनेवालों की कमी नहीं थी। औरतों में बातें उठने लगीं। मर्दों ने कहा कि औरतें डाह से यों ही बकती हैं। फिर मर्द भी वही बात कहने लगे और आपस में विस्मय प्रकट करते कि कुन्ती का मर्द यह सब देखकर भी क्यों चुप है। कोई गुस्से में कह बैठता—"हम होते तो ऐसी छिनाल का मूड़ काट लेते......" पर दूसरों के घर की औरतें न तो कुन्ती की तरह छमक-छबीली थीं, न उन्हें शहर के नाज-नखरे ही आते थे। कुन्ती का मर्द भी कुछ बौड़म ही था।

"भाड़ में जाय चुड़ैल।"—जानकी ने कह दिया,"यह वेश्या है। उसके लिए जितने मर्द हों, कम हैं!"

जानकी क्रोध और निराशा से बावली हुई जा रही थी। उसके आदमी की दुकान बैठती जा रही थी। शहर के लोगों ने आकर बड़ी-बड़ी दुकानें खोल ली थीं। अब उसकी दुकान को कौन पूछता!

कुछ दिन बाद जानकी के आदमी की दुकान समाप्त हो गयी और वे लोग अपनी गठरी-मुठरी सिर पर उठाये बाल-बच्चों सहित गाँव से चल दिये। न उन्होंने यह बताया कि वह कहाँ जा रहे हैं और न किसी ने कोई प्रश्न किया। जानकी के बड़े लड़के को टेनेरी में मजदूरी मिल गयी थी। वह गाँव में ही रह गया। जानकी के आदमी की दुकान के पड़ोस के दुकानदार प्रसन्न थे कि ग्राहक बँटानेवाला एक आदमी गया। मजदूरों का एक परिवार उनके छप्पर में आकर बस गया। सिर छिपाने की जगह पाकर यह मजदूर भी प्रसन्न थे। परन्तु जानकी के परिवार का चला जाना हमें अच्छा नहीं लगा। कई दिन तक उनकी याद आती रही और फिर हम भी भूल गये।

❀ ❀ ❀

टेनेरी बढ़ती ही जाती थी। नयी-नयी इमारतें बनती जा रही थीं और नये मजदूर आकर बसते जा रहे थे। आये दिन किसी-न-किसी मजदूर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के खेत बिक जाते और टेनेरी की नई इमारतें बनने लगतीं। कारखाने में दिन-रात काम चलता रहता। खालों से भरी बैलगाड़ियों का निरन्तर ताँता बँधा रहता। गाय, बैल, बकरी, घोड़े, गधे, साँप और गोह सभी तरह की खालें आतीं। टेनेरी में उनकी कमाई और रँगाई होती और गाड़ियों में लादकर भेज दी जातीं। हमें विश्वास न हो पाता कि धरती पर इतने जीव हैं, इतनी खालों के लिए बाजार कहाँ होगा! हमारे अविश्वास के बावजूद काम चल ही रहा था।

टेनेरी में अब बहुत-से और अफसर भी आ गये थे। पहले जो गोरा साहब आया था वह तो मालिक था, अब नौ-दस मुसलमान अफसर भी आ गये। इन लोगों ने नये बसे शहर और टेनेरी के बीच, पक्की ईंट के सफेद पुते और खपरैल के मकानों की बस्ती अलग बसा ली। मर्द तो दिन भर काम करते थे, बल्कि रात में भी काम करते रहते, परन्तु उनके घर की औरतों का ढंग निराला ही था। ये औरतें घर में जाने क्या करती थीं। घर के काम-काज के लिए इनके यहाँ नौकर थे। बाहर वे कम ही निकलतीं, घर के बाहर निकलतीं भी तो चादर या बुरके से शरीर को ढके रहतीं। लोग कहते थे कि उनके धर्म में ऐसा ही होता है कि औरत को उसके पति के सिवा दूसरा मर्द देख नहीं सकता। इनमें से कभी कोई औरत अपने दरवाजे या खिड़की के परदे के पीछे से झाँकती दिखाई दे जाती या बाजार में भारी-भारी कपड़ों से लदे चलते हुए घूंघट के बुरके की ओट से उनका चेहरा दिखाई दे जाता तो मुझे उन पर बहुत दया आती—यह भी क्या मुसीबत है! बिचारी धूप और ताजी हवा का सुख कभी पा ही नहीं सकतीं, न मर्दों के साथ हिलमिलकर बात ही कर सकती हैं, न उनके साथ मिलकर काम-काज करने का संतोष पा सकती हैं।

"क्या दुःख है उन्हें?"—काली बोली, "मजे करती हैं। उन्हें क्या चिन्ता है? न कुछ करने की, न खाने-ओढ़ने की फिकर। खाट पर बैठे-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बैठे सब कुछ मिलता है। हमारे लिए कोई ऐसा कर दे तो हम भी घूँघट काढ़ और बुरका ओढ़ कर बैठ जायँ।"

"बहुत होगा दो-चार महीने के लिए बैठ जाओगी।"—मैं बोली, "उमर ऐसे थोड़े ही कट सकती है। हवा और धूप-छाँह के बिना आदमी कैसे रह सकता है?"

"क्या बक-बक करती हो तुम लोग?"—काली का आदमी बोल उठा, "कुछ समझ भी है तुम लोगों में। उनके लिए उनका ढंग, तुम्हारे लिए तुम्हारा ढंग। कहीं मन के चाहे से कुछ हो सकता है!"

अब की बार मैंने इन लोगों को समीप से देखा। मैं तरकारी का टोकरा लिये शहर जा रही थी। उनमें से एक ने मुझे संकेत से बुला लिया। मुझे घर में बुलाकर उसने किवाड़ बन्द कर दिये, सिर का कपड़ा उतारकर एक ओर रख दिया और टोकरी में से तरकारी छाँटने लगी। चेहरा दुबला और पीला था, वैसे ही कोमल-कोमल कमजोर-से हाथ-पाँव, रोगी की सी आँखें। उँगलियों पर बहुत-सी अंगूठियाँ पहने हुए थी। एक ही अंगूठी के दाम से हमारा साल भर पेट भर जाय। तरकारी लेकर उसने दाम दे दिये। मैं बाहर निकली तो उसने मुस्कराकर तुरन्त किवाड़ मूंद लिये। फिर मैं उधर नहीं गयी। मुँदे हुए किवाड़ों और खिड़कियों के भीतर जाने के विचार से मुझे घबराहट लगती थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[९]

एक दिन सुबह-सुबह मैं लाल मिर्चें कूट रही थी। खल में कुटना पड़ने का धम-धम शब्द हो रहा था। सूखी मिर्चों पर चोट पड़ने से महीन लाल चूरा उड़ता जा रहा था। मिर्चों की तीखी सुहावनी गंध उड़ रही थी। मेरी आँखों और नाक से पानी बह-बह कर आता था। मैं बार-बार रुककर आँखें और नाक पोंछ लेती थी। बहुत सुहावना प्रभात था, चारों ओर शान्ति थी। टेनेरी के कारखाने और मजदूरों के शब्द की गूंज भी नहीं आ रही थी। उस दिन रविवार रहा होगा। सप्ताह में एक दिन, रविवार के दिन ही टेनेरी में काम बन्द रहता था। जब भी मैं आँखें और नाक पोछने के लिए कूटना रोक देती, पक्षियों के चहचहाने का स्वर सुनाई देने लगता। खूब दूर कोई दो जने आते हुए दिखायी दिये। मैं मिर्चें कूटती गयी और आँख उठाकर उस ओर देखती भी रही। इतनी दूर से पहचाना नहीं जा सकता था। वे लोग समीप आ गये तो पहचाना, मेरी लड़की आ रही थी। ब्याह के बाद उसे एक बार ही देख पायी थी। तब से बरस से ऊपर हो गया था। मन उमड़ आया, मैं तुरन्त उठी, मिर्चें समेटकर एक ओर रखीं, मुँह धोया और तुरन्त चावल का आटा लेकर सगुन के लिए द्वार पर आ लेपन बनाने लगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इरा धीमे-धीमे थकी हुई सुस्त-सी चली आ रही थी। मुझे देखकर भी उसके कदम चंचल नहीं हुए। मैंने सोचा, क्या बात है; यह क्या जवानी की चाल है। बात क्या है ? जब वह समीप आ गयी तो लड़की और जमाई का मुख देख दिल बैठ गया। मैं कुछ बोल न सकी।

इरा ने झुककर मेरे पाँव छुए। मैंने उसे उठाकर गले से लगाया और कहा—"आ भीतर चल, तू बहुत थकी हुई है।"

इरा चुपचाप भीतर चली गयी। जमाई चुपचाप खड़ा था। "भीतर आओ न।"—मैंने उसकी ओर देखकर कहा, "कितनी दूर से चलकर आये हो, जरा सुस्ता लो।"

"बैठना क्या है ?"—जमाई रुखाई से बोला, "नाराज होने की बात नहीं। तुमने अपनी लड़की मुझे ब्याह दी मैं उसे यहाँ छोड़ने आया हूँ। यह तो बाँझ है।"

मेरा दिल दहल गया। अपने को सँभालकर धीरे से बोली—"ब्याह को कौन बहुत दिन हो गये हैं, बाल-बच्चा क्यों नहीं होगा ? मेरे भी तो कई बरस बाद ही हुआ था।"

"पाँच बरस तो देख लिये।"—जमाई ने उत्तर दिया, "चढ़ती जवानी में ही नहीं हुआ तो फिर क्या होगा ? हमें तो बेटा चाहिए।"

मैंने इरा के बाप को खेत पर से बुलवा लिया। जमाई ने अपनी बात दोहराई और वह उठकर चला गया।

"उसे क्या दोष दें ?"—इरा के बाप बोले, "वह तो ठीक ही कह रहा है। बेटा किसे नहीं चाहिए ? पाँच बरस तक उसने सबर किया।"

"तो क्या हो गया ?"—मैं बोली, "तुमने भी तो सबर किया था।"

इरा सिर बाँहों और घुटनों में दिये थी। मैं उसके पास जा बैठी तो उसने सिर उठाया और बहुत हौले से उसके होंठ हिले। देखने में अब भी बहुत रूप था, परन्तु माथे पर रेखाएँ और आँखों के नीचे झाइँयाँ पड़ गयी थीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"रहने दे मा। मैं तो जानती थी, यही होने को है। उसी से डर रही थी। अब क्या डर है ? जो होना था हो गया। अब क्या छिपाना और क्या झूठ बोलना ?"

"तू ऐसा दिल क्यों छोटा करती है।"—मैंने समझाया, "तेरा इसमें क्या दोष। हमारी तो तू बेटी है !"

"बाँझ को रख कर कोई क्या करेगा ?"—इरा ने गहरी साँस लेकर कहा, "बाँझ से किसी को क्या फायदा।"

यह दुःख और कलक मैं भी तो झेल चुकी थी, और अब वही मेरी बेटी पर बीत रही थी।

"बिटिया ऐसा नहीं कहो।"—मैंने समझाया, "भगवान् कृपालु हैं, वे सबकी सुनते हैं।"

मुझे केनी डाक्टर की याद आयी, ढाढ़स-सा हुआ। डाक्टर साहब दया करें तो लड़की का भला हो सकता है। डूबती को सहारा-सा जान पड़ा।

× × ×

अर्जुन की उम्र अट्ठारह-उन्नीस की रही होगी। खूब लम्बा हो गया था। देखने में और भी अधिक का लगता था। मैंने उसे, जितना जानती थी, लिखना-पढ़ना सिखा दिया था, परन्तु जाने कैसे वह इतना सीख गया कि मुझे क्या, गाँव के सभी लोगों को सिखा सकता था। स्कूल-पाठशाला में तो उसे हम कभी भेज न सके, न उसके लिए कभी पुस्तक या कागज ही खरीदा, परन्तु वह जाने कहाँ से पुस्तकें ले आता और कागज भी बटोर लेता। कागज न भी मिलता तो धरती पर ही लिखा करता। हम उससे पूछते तो कुछ बताता नहीं। मन-ही-मन मुझे अच्छा भी लगता कि लड़का पढ़-लिख कर अपने नाना के ढंग पर जा रहा है। अर्जुन का बाप देखता कि लड़का खेती की ओर मन न लगाकर कागज-पुस्तक में समय गँवाता है तो उसे अच्छा न लगता। परन्तु एक दिन अर्जुन ने आकर कहा कि उसने टेनेरी में नौकरी कर ली है तो मैं भी घबरा गयी। मुझे डर लगा, ऐसा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

न हो कि लड़का न खेती के काम का रह जाय और न लिख-पढ़ ही पाये।

"अभी तेरी उमर ही क्या है!"—मैंने समझाया, "हम लोग चमार या डोम थोड़े ही हैं जो तू टेनेरी में काम करेगा। जात-बिरादरी के लोग क्या कहेंगे?"

"चूल्हे में जायँ।"—अर्जुन बोला, "इस सबकी परवाह कौन करे! पेट तो किसी तरह भरेंगे।"

मेरे दिल को बड़ी चोट लगी। लड़के कैसे रूखे हो जाते हैं, मानों हम उसे जान-बूझ कर भूखा रखते रहे। घर में जो कुछ था लड़कों के बाप के बाद मैं सबसे पहले बड़े लड़के को ही देती थी।

"तू जाने तेरा काम जाने।"—दुखी होकर मैंने कहा, "तू घर का बड़ा लड़का है, ऐसा करना तुझे नहीं सोहता।"

"तुम्हें मैं कब दोष देता हूँ?"—अर्जुन ने कहा, "पर ऐसे कब तक चलेगा? घर में किसी का भी पेट नहीं भर पाता। अब बहन और आ गयी है, खाने को एक मुँह और बढ़ गया है।"

"लाज नहीं आती है तुझे? अपनी बहन के लिए ऐसा कहता है?"—मैं क्रोध से बोली, "बेचारी अपना आधा भाग तुम लोगों के लिए छोड़ देती है।"

"मैं कब बहन से डाह करता हूँ?"—अर्जुन ने उत्तर दिया, "वह बेचारी भूखी रहती है, तुम भूखी रहती हो, कहीं से कुछ आये तो।"

अर्जुन ठीक ही कह रहा था। कई बरस से फसलें बिगड़ती ही जा रही थीं और गाँव में महँगाई भी बढ़ती ही जा रही थी।

"तो भई तू जान।"—मैंने कहा, "तेरा मन करे सो कर। तू छोटे मुँह बड़ी बात करता है। तुझे कौन नौकरी देगा? हमने तो सुना है कि कारखाने में अब और नौकरी नहीं है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"कुन्ती का लड़का दिला देगा नौकरी।"—अर्जुन बोला, "उसने मुझसे वादा किया है।"

कुन्ती और उसके बेटे का एहसान लेना मुझे अच्छा नहीं लगा। उन लोगों के ढंग दूसरे थे और उनका मिजाज भी बहुत बढ़ गया था। कुन्ती का लड़का भी देखने-सुनने में अच्छा था, इसलिए उसके पाँव जमीन पर नहीं पड़ते थे।

"तुझे कुन्ती के लड़के को सिफारिश की क्या जरूरत है"—मैंने अर्जुन को टोका, "मैं केनी साहब से कह दूंगी। साहब की बात कोई टाल सकता है!"

"साहब की बात तो चलती है"—अर्जुन विद्रूप से बोला, "उनको सभी मानते हैं, औरतें तो और भी ज्यादा।"

"क्या कह रहा है तू?"—मैंने उसे धमकाया, "बोल, सीधे-सीधे बोल।"

अर्जुन ने मुँह फेर लिया और तिरछी आँखों से मेरी ओर देखता चला गया।

कुछ दिन बाद अर्जुन को टेनेरी में नौकरी मिल गयी और दूसरा लड़का थांबी भी वहीं काम करने लगा। लड़के दोनों एक-जैसे ही थे, सो एक ही ढंग पर गये। उनके बाप ने भी बहुत समझाया, पर कुछ न बना। उनके बाप को आशा थी कि लड़के उसका हाथ बँटायेंगे, पर क्या करता।

"यह धरती अपनी तो है नहीं।"—थांबी ने कहा "धरती अपनी होती तो मैं सब कुछ करता। मुट्ठी भर अन्न के लिए पराई धरती में अपना शरीर क्यों गलाऊँ। मैं यह जुल्म क्यों सहूँ।"

लड़कों की बात सुनकर उनका बाप चुप रह गया। उसकी आँखें छलक आयीं। उनके अपने दिल में बड़ी साध थी कि एक दिन अपने खेत खरीद लेंगे और खेत अपने हो जायँगे। परन्तु ज्यों-ज्यों लड़के बड़े होते गये आशा धुंधली होती गयी और अब आशा नहीं थी। अब उन्हें क्या उनके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लड़कों को भी अपने खेतों के स्वामी हो जाने की आशा नहीं रही थी। थांबी भी बड़े भाई की तरह उन्हें छोड़कर चला गया और जाते-जाते ऐसी कड़वी बात कह गया।

लड़के हमारे घर छोड़ गये, फिर भी थे भले। उनका कभी किसी से झगड़ा-झंझट नहीं हुआ और अपनी कमाई में से हमें भी देने लगे। घर में खाने-पीने को हो गया। कोठार में भी मैंने आधी बोरी चावल, दो-तीन सेर दाल और आधा सेर मिर्चें बचाकर रख लीं। अब तक जो कुछ बेच पाते थे, सब खेतों के लगान में ही चला जाता था। अब कुछ बचाने लगे। मिर्चें नहीं बेचनी पड़ीं, इस बात से मुझे संतोष था। हमारे लिए मिर्चें बड़ी चीज थीं। जब कोरा भात खाते-खाते मन घी, दही और मसाले के लिए तरसने लगता तो तीखी-सी मिर्चों के सहारे कोरा भात बुरा नहीं लगता। हमने अपने छप्पर काछा जन भी फिर से नया बना लिया था। कई बरस बाद बच्चों के लिए कपड़े खरीदे और अपने लिए एक साड़ी भी खरीदी। लड़कों के बाप की धोती टुकड़े-टुकड़े हो गयी थी। वे एक अँगोछा ही कमर में लपेटे रहते थे। इन्होंने बहुत मना किया, परन्तु एक धोती उनके लिए खरीद ली।

इरा के ब्याह के समय जो कपड़े मैंने और लड़कों के बाप ने पहने थे, उन्हें हम सहेज कर रखे हुए थे कि लड़कों के ब्याह के समय काम आयेंगे। उनके ब्याह के समय बिना कपड़ों के रहकर कैसे नाक कटा लेते!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[१०]

दिवाली आ गयी। त्योहार तो बच्चों के लिए होते हैं, परन्तु बड़े-बूढ़े भी कुछ प्रसन्न हो लेते हैं। मैंने वत्तियाँ वनाकर रख ली थीं, उन्हें तेल में भिगो कर रात में जलाने के लिए दियों में रख दिया। बच्चों को भी आतिशबाजी के लिए दो-दो आने दे दिये। ऐसा अब तक नहीं कर सके थे। पड़ोसियों की आतिशबाजी देखकर ही मन भर लेते थे या गाँव में जाकर दिवाली देख आते थे। मन में तो आया कि ऐसे पैसा फूंकने से क्या लाभ, परन्तु बच्चों को खुशी से कूदते देख कर अच्छा ही लगा। सोचा, एक बार हो ही गया तो क्या, कौन रोज-रोज की बात है! अँधेरा हुआ तो हमने छप्पर के चारों ओर दिये सजा दिये। धीमी-धीमी बयार चल रही थी। हवा से दीपों की लौ थरथरा कर काँप रही थी। कस्बे में और हमारे पड़ोस में सैकड़ों जगह आतिशबाजी छूटने लगी। अनार, काले-अँधियारे आकाश में जाकर खूब ऊपर फूटते और इनसे रंग-बिरंगे तारे झड़ने लगते। ज्यों-ज्यों रात बढ़ने लगी, बड़े-बड़े पटाखे खूब जोर से चलने लगे। कान बहरे हुए जा रहे थे। बच्चों ने फुलझड़ियाँ, छछूंदर और पटाखे खरीद लिये थे। लड़के पटाखे जलाकर एक-दूसरे की ओर फेंकते और कूदकर बच जाते। सबसे छोटा लड़का सिलवा डर कर एक ओर खड़ा, भाग जाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तैयार तमाशा देख रहा था। सिलवा ने पटाखे और फुलझड़ियाँ न लेकर गन्ना ले लिया था। वह अपने सिर से भी ऊँचा गन्ने का टुकड़ा लिये मेरे पास खड़ा था।

"अरे जा तू भी खेल।" मैंने सिलवा से कहा, "दिवाली रोज-रोज थोड़े ही आती है। अबकी बार आतिशबाजी भी तुझे ले दी है, जा खेल।"

"अम्मा मुझे डर लगता है।"

दिवाली के लिए खाना भी अच्छा बनाया था। सब लोगों ने खा लिया। पटाखे भी खत्म हो गये और दियों में तेल भी चुक गया तो हम लोग कस्बे की दीवाली देखने के लिए चले। सिलवा बोला, मैं नहीं जाऊँगा। लड़का जिद्दी था, उसे समझाना व्यर्थ था। इरा भी नहीं गयी। बोली, मैं भी नहीं जाती; लड़के को सँभाले रहूँगी। ससुराल से लौटकर इरा कहीं आती-जाती नहीं थी। पास-पड़ोस के सभी लोग कस्बे की बड़ी दिवाली देखने चले जा रहे थे। अलैया-बलैया में आग दी जा चुकी थी और लपटें उठने लगी थीं। हवा में दियों में जलते तेल की गंध भर गयी थी। पिछड़ जाने के डर से सब लोग कस्बे की ओर भागे जा रहे थे। तभी मुझे सहसा जानकी की याद आ गयी। पिछले वर्ष हम सब लोग एक साथ दिवाली देखने गये थे। इस साल वे लोग जाने कहाँ हैं। किसी को उनकी याद भी नहीं। मन में बुरा लगा। फिर सोचा, ऐसे याद, कर दुखी होने से फायदा क्या, जाने दो ········।

बड़ी भारी भीड़ थी। आस-पास के गाँवों और टेनेरी से स्त्री, पुरुष और बच्चे इकट्ठा हो गये थे। प्रायः ही लोगों ने नये कपड़े पहन लिये थे। स्त्रियों और लड़कियों ने केशों में फूल गूँथ रखे थे और कलाइयों में काँच की चूड़ियाँ, पाँव में बिछुए पहन रखे थे। कुछ स्त्रियाँ पायल भी पहने थीं और कुछ कमर पर चाँदी की करधनी भी बाँधे थीं।

कस्बे के चौक में अलैया-बलैया लगी हुई थी। पिछले दो सप्ताह से सब लोग इसमें लकड़ी-ईंधन, झाड़-झंखाड़ और कूड़ा-करकट जो पाते,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

डालते जा रहे थे। अब आग दी जाने पर वह कई तरह के शब्द कर चटकती हुई जलने लगी थी। लोग आग को प्रचण्ड करने के लिए कपूर और तेल से भरे चिथड़े उस में फेंकते जा रहे थे। ज्यों-ज्यों लपटें बढ़ती जा रही थीं, लोग पीछे सरकते जा रहे थे और घेरा बढ़ता जा रहा था।

भीड़ में मैं बच्चों और बच्चों के बाप से बिछुड़ गया या वे मुझसे बिछुड़ गये। मैंने भीड़ में इधर-उधर उन्हें ढूँढ़ने के लिए बहुत हाथ-पाँव मारे, परन्तु मुझे कोई जगह देने के लिए तैयार नहीं था। मैं चुप रह गया। नगाड़े वजने लगे और ज्वालाएं और भी प्रचण्ड होने लगीं। कभी वह हू-हू कर आकाश की ओर लपकतीं और कभी चारों ओर खड़ी भीड़ की ओर। जिस दिशा में हवा होती उसी ओर ज्वालाएं झुकने लगतीं और उस ओर भीड़ का घेरा पीछे हटने लगता। आग के ताप से लोगों के चेहरे लाल होकर चमकने लगे। कुछ स्त्रियों ने मुख के सामने आँचल कर लिया। चरम सीमा पर पहुँचकर लपटें गिरने लगीं। कुछ देर बाद केवल अंगारों का ढेर रह गया, नगाड़े भी धीमे पड़ गये। अब कपूर, तेल और चमेली के फूलों के साथ ताड़ी की गंध ही अधिक मालूम होने लगी। बहुत-से लोग ताड़ी पिये थे और कुछ अधिक पी जाने के कारण बहक भी रहे थे। मैं बच्चों और उनके बाप को ढूँढ़ने लगी। देखा तो यह एक लड़के को कंधे पर उठाये और दूसरे दो को गोद में कूल्हों पर टिकाये पागल से इधर-उधर दौड़ते फिर रहे थे। और लोग इन्हें देखकर हँस रहे थे। मैंने इन्हें पुकारा—"होश करो, ऐसे सुध-बुध क्यों बिसरा दी।"

मेरी पुकार सुन वह बच्चों को उठाये मेरी ओर दौड़े आये और बोले—"सुध कहाँ बिसरा दी है। बस चिन्ता बिसरा दी है, कैसा मजा आ रहा है!" और वह खिलखिला कर हँस पड़े।

"क्या मजा आ रहा है!"—मैंने उन्हें धमकाया, "क्या ताड़ी बहुत चढ़ गयी है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"ताड़ी पी किसने !"—इन्होंने उत्तर दिया, "नहीं मानती हो तो सूंघकर देख लो।"

"कैसे सूंघकर देख लूं, तुम इतने ऊँचे तो हो।"—मैंने उत्तर दिया।

"उठा दो भई, इसे उठा दो ऊँचा कोई" यह बोल उठे और फिर दसियों आवाजें बोल उठीं, "हाँ-हाँ, उठाओ इसे, उठाओ इसे।"

"अभी उठाता हूँ।"—यह बोले और बच्चों को इन्होंने धरती पर खड़ा कर दिया तथा मुझे एक झपाटे में कंधे तक उठा लिया। आस-पास खड़े लोग ताली बजाकर खिलखिला कर हँसने लगे।

"तुम्हें क्या हो गया है ?"—क्रोध से जलते हुए मैं बोली, "पागल हो गये हो ? कुछ शरम करो, अपनी उमर का तो ख्याल करो।"

"वाह, किस बात की शरम करूँ!"—ये आस-पास खड़े लोगों की ओर देखकर बोले, "खुशी का दिन है। हम खुशी हैं, बच्चे खुशी हैं और तुम्हारे क्या कहने!"

अब मैं क्या कहती। हम लोग लौटे, तब भी यह रास्ते भर गाते रहे। बच्चे थक गये थे, इसलिए चुपचाप चले आ रहे थे। छुटका बार-बार गोद में उठा लेने की जिद्द कर रहा था और रोताचला आ रहा था।

उस रात बड़ी गर्मी थी। आँगन को उस दिन सुबह बुहारकर लीप दिया था। इरा सिलवा को लेकर सोई हुई थी। हम लोग भी वहीं लेट रहे। लड़के लेटते ही सो गये। ये इतने खुश थे कि इन्हें नींद ही नहीं आ रही थी। मैं इनके साथ ही लेट गयी। मेरा अंग इनसे छू गया तो ये सहसा मेरी ओर बढ़ आये। मुँह से कुछ नहीं बोल पाये, न मैं ही, परन्तु हृदय और शरीर का रक्त खौल उठा। चारों ओर नीरवता थी और चिकना गहरा अंधकार था। जान पड़ा, उत्तेजना से इनका शरीर काँप रहा था। मेरे शरीर का भी रोम-रोम इनकी प्रतीक्षा में खुल गया। मैं नेत्र मूंदे प्रतीक्षा करने लगी। उस प्रतीक्षा में मानों मैं पिघली जा रही थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[११]

अर्जुन के वाप के सम्वन्धियों में कोई मर गया था। इन्हें अर्थी के साथ जाना था। ये चले गये तो अवसर पाकर मैं केनी साहव के यहाँ गयी। इनके सामने जाने का साहस नहीं हुआ। जानती थी, अपनी घरवाली या लड़की का फिरंगी के यहाँ जाना इन्हें बुरा लगेगा। मेरे पिता की बात दूसरी थी, परन्तु इनसे मुझे भय था। न जाती तो इरा के लिए दूसरा उपाय ही क्या था, जाये बिना कैसे सरता! मैंने इरा को समझा दिया, वह समझी तो, परन्तु उसने कुछ उत्साह नहीं दिखाया। वह उदासी में डूबती जा रही थी, उसे न अपने तन-बदन की चिन्ता थी न किसी और बात की। जिसके मर्द ने औरत को छोड़ दिया हो उसके लिए जिन्दगी में रह ही क्या गया!

डाक्टर साहव टेनेरी के समीप ही एक छोटे-से मकान में थे। वह एक कमरे में थे, दरवाजा बन्द था। बाहर बहुत-से लोग पाँत में खड़े थे। लोग एक-एक कर भीतर जा रहे थे। जब भी किवाड़ खुलता, उनकी एक झलक दिखाई दे जाती। मैं सामने धरती पर बैठ गयी, बैठे-बैठे साँझ हो गयी, सूरज छिप गया, तब डाक्टर साहव बाहर निकले। डाक्टर साहव बहुत थके हुए थे। आँखें लाल हो रही थीं, जान पड़ता था, बहुत क्रोधि त हों। उन्हें देख मैं भय से काँप गयी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"आज और नहीं।"––डाक्टर साहब ने भीड़ की ओर देखकर संक्षेप में कहा। भीड़ छटने लगी। लोग हट गये, तब मैं उनके पीछे-पीछे चली। वे लम्बे-लम्बे कदम उठाते हुए चले जा रहे थे। मैं भागती हुई उनके पीछे चल रही थी। मेरे कदमों की आहट सुनी तो उन्होंने पीछे घूमकर मुझे देखा। माथे पर बल पड़े हुए थे, मैं और भी डर गयी।

"एक बार कह दिया, आज और नहीं। तुमने सुना नहीं? हम भी कभी थक जाता है।"

"मालिक, मैं सुबह से बैठी हूँ।"––मैं बोली, "मेरा आदमी लौट आयेगा तो मैं आ नहीं सकूँगी।"

साहब के माथे की त्योरियाँ गहरी हो गयीं। थकान के स्वर में बोले–– "तुम लोग कभी नहीं समझेगा, तुमको कभी अकल नहीं आयेगा।"

"मालिक मेरी, लड़की बहुत मुसीबत में है।"––मैंने गिड़गिड़ाकर कहा, "बेचारी बाँझ है हुजूर, जैसी मेरी हालत थी।"

"उसे तो जब होगा, पहले तुम्हारे ही एक और होगा।"––साहब ने जवाब दिया और मुस्करा दिये, "तुम्हें तो अब भी कमी नहीं रही।"

"हाँ मालिक।"–मैंने उत्तर दिया, "अब तो भगवान् बिटिया को ही देते तो भला था। बेचारी बड़ी मुसीबत में है, उसके मर्द ने उसे छोड़ दिया है।"

"तो फिर वह क्यों नहीं आयी।"––साहब बोले, "उसे जरूरत थी तो वह आती।" और साहब फिर नाराज हो गये।

"क्षमा करें।"––मैंने गिड़गिड़ाकर कहा, "मालिक जाने·····।"

डाक्टर साहब मेरी तरफ बढ़ आये और अपने दोनों हाथ मेरे कन्धों पर रख दिये। मैं घबरा गयी।

"तुम क्यों डरता है।"––साहब हँस कर बोले, "इतना बूढ़ा हो गया, फिर भी अभी डरता है। तुम्हारी बेटी की दवा देंगे, लेकिन सब भगवान् के हाथ में है।"

साहब चले गये और मैं वहीं धरती पर बैठी सोचती रही। घर लौटने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के लिए उठी तो चन्द्रमा उठ आया था। खूब बड़ा काँसे की थाल-सा आकाश में चमक रहा था। हवा ठहरी हुई थी। बड़े-बड़े चिमगादड़ चाँय-चाँय करते आकाश में इधर-उधर घूम रहे थे। पगडंडी चाँदी की लकीर की तरह चमक रही थी। चारों ओर गहरी नीरवता थी, कहीं कोई आहट नहीं।

सहसा मुझे अपने नाम की पुकार सुनायी दी। मेरे पाँव रुक गये, दिल धड़कने लगा। सामने देखा तो कुन्ती थी। वह पगडंडी के जोड़ पर खिलखिलाती चाँदनी में खड़ी थी।

"मैं तो डर गयी।"—मैंने कहा, "तू यहाँ कहाँ?"

"सो तो देख ही रही हूँ।"—कुन्ती ने मेरी ओर बढ़ कर धीरे से उत्तर दिया, "बड़ी रात हुए निकलती हो!"

"सो तो तुम भी रात में ही निकली हो।"—मुझे कुन्ती की बात अच्छी नहीं लगी, रूखे स्वर में मैं बोली, "आज एक काम था।"

"काम तो सभी को होता है।"—कुन्ती ने विद्रूप के स्वर में कहा, "बिना काम के कौन निकलता है!"

"काम-काम में फर्क होता है।"—मैं उसकी ओर घूरकर बोली। कुन्ती और आगे बढ़ आयी, मेरे बहुत समीप। उसके केशों में गुँथे फूलों की गंध आने लगी और उसके होंठों पर लगा रंग भी दिखायी दिया।

"क्या मतलब तेरा?"—कुन्ती ने पूछा।

"मतलब यही कि मुझे अपने काम से मतलब, तू अपने काम से मतलब रख। मुझे जाने दे।"

कुन्ती मेरे सामने ही खड़ी रही और बोली—"लोग कहते तो मैं कभी न मानती; पर अब तो अपनी आँखों देख रही हूँ।"

"लोग क्या कहते?"—मैंने पूछा, "क्या देख रही है तू?"

"यह देख रही हूँ कि इस उमर में भी तुझे इतनी गरमी है।"—कुन्ती ने बेशरमी से कहा, "रातों में चैन नहीं आती। तेरे मर्द को मालूम हो जाय तो...... ।" कुन्ती एक कदम और आगे बढ़ आयी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"आज और नहीं।"––डाक्टर साहब ने भीड़ की ओर देखकर संक्षेप में कहा। भीड़ छटने लगी। लोग हट गये, तब में उनके पीछे-पीछे चली। वे लम्बे-लम्बे कदम उठाते हुए चले जा रहे थे। मैं भागती हुई उनके पीछे चल रही थी। मेरे कदमों की आहट सुनी तो उन्होंने पीछे घूमकर मुझे देखा। माथे पर बल पड़े हुए थे, मैं और भी डर गयी।

"एक बार कह दिया, आज और नहीं। तुमने सुना नहीं? हम भी कभी थक जाता है।"

"मालिक, मैं सुबह से बैठी हूँ।"––मैं बोली, "मेरा आदमी लौट आयेगा तो मैं आ नहीं सकूँगी।"

साहब के माथे की त्योरियाँ गहरी हो गयीं। थकान के स्वर में बोले–– "तुम लोग कभी नहीं समझेगा, तुमको कभी अकल नहीं आयेगा।"

"मालिक मेरी, लड़की बहुत मुसीबत में है।"––मैंने गिड़गिड़ाकर कहा, "बेचारी बाँझ है हुजूर, जैसी मेरी हालत थी।"

"उसे तो जब होगा, पहले तुम्हारे ही एक और होगा।"––साहब ने जवाब दिया और मुस्करा दिये, "तुम्हें तो अब भी कमी नहीं रही।"

"हाँ मालिक।"–मैंने उत्तर दिया, "अब तो भगवान् बिटिया को ही देते तो भला था। बेचारी बड़ी मुसीबत में है, उसके मर्द ने उसे छोड़ दिया है।"

"तो फिर वह क्यों नहीं आयी।"––साहब बोले, "उसे जरूरत थी तो वह आती।" और साहब फिर नाराज हो गये।

"क्षमा करें।"––मैंने गिड़गिड़ाकर कहा, "मालिक जाने·····।"

डाक्टर साहब मेरी तरफ बढ़ आये और अपने दोनों हाथ मेरे कन्धों पर रख दिये। मैं घबरा गयी।

"तुम क्यों डरता है।"––साहब हँस कर बोले, "इतना बूढ़ा हो गया, फिर भी अभी डरता है। तुम्हारी बेटी की दवा देंगे, लेकिन सब भगवान् के हाथ में है।"

साहब चले गये और मैं वहीं धरती पर बैठी सोचती रही। घर लौटने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के लिए उठी तो चन्द्रमा उठ आया था। खूब बड़ा काँसे की थाल-सा आकाश में चमक रहा था। हवा ठहरी हुई थी। बड़े-बड़े चिमगादड़ चाँय-चाँय करते आकाश में इधर-उधर घूम रहे थे। पगडंडी चाँदी की लकीर की तरह चमक रही थी। चारों ओर गहरी नीरवता थी, कहीं कोई आहट नहीं।

सहसा मुझे अपने नाम की पुकार सुनायी दी। मेरे पाँव रुक गये, दिल धड़कने लगा। सामने देखा तो कुन्ती थी। वह पगडंडी के जोड़ पर खिलखिलाती चाँदनी में खड़ी थी।

"मैं तो डर गयी।"—मैंने कहा, "तू यहाँ कहाँ?"

"सो तो देख ही रही हूँ।"—कुन्ती ने मेरी ओर बढ़ कर धीरे से उत्तर दिया, "बड़ी रात हुए निकलती हो!"

"सो तो तुम भी रात में ही निकली हो।"—मुझे कुन्ती की बात अच्छी नहीं लगी, रूखे स्वर में मैं बोली, "आज एक काम था।"

"काम तो सभी को होता है।"—कुन्ती ने विद्रूप के स्वर में कहा, "बिना काम के कौन निकलता है!"

"काम-काम में फर्क होता है।"—मैं उसकी ओर घूरकर बोली। कुन्ती और आगे बढ़ आयी, मेरे बहुत समीप। उसके केशों में गुँथे फूलों की गंध आने लगी और उसके होंठों पर लगा रंग भी दिखायी दिया।

"क्या मतलब तेरा?"—कुन्ती ने पूछा।

"मतलब यही कि मुझे अपने काम से मतलब, तू अपने काम से मतलब रख। मुझे जाने दे।"

कुन्ती मेरे सामने ही खड़ी रही और बोली—"लोग कहते तो मैं कभी न मानती; पर अब तो अपनी आँखों देख रही हूँ।"

"लोग क्या कहते?"—मैंने पूछा, "क्या देख रही है तू?"

"यह देख रही हूँ कि इस उमर में भी तुझे इतनी गरमी है।"—कुन्ती ने बेशरमी से कहा, "रातों में चैन नहीं आती। तेरे मर्द को मालूम हो जाय तो......।" कुन्ती एक कदम और आगे बढ़ आयी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं क्रोध में पागल हो गयी, मेरा सिर घूम गया। मैंने कुन्ती के दो-तीन थप्पड़ मार कर उसे पकड़कर झिझोड़ दिया। उसका शरीर दुबला-पतला था, वह कुछ सँभल न सकी। उसके कंधों से उसकी महीन साड़ी गिर गयी। तब मैंने देखा कि वह साड़ी को कमर पर नहीं, वेश्याओं की तरह नाभि पर बाँधे थो। साड़ी के भीतर कोई कपड़ा नहीं था। कूल्हों पर चन्दन लगाये थी, स्तनों का उभार दिखाने के लिए उनके नीचे रंग मले हुए थो और घुण्डियों पर उसने सिन्दूर लगा लिया था। उसके केश खुलकर कंधों पर फैल गये थे।

"छिनाल, जबान चलाई तो जान ले लूँगी।"——मैंने उसे चेतावनी दी।

कुन्ती चुप रह गयी और अपने कपड़े सँभालने लगी। फिर चलते-चलते कह गयी——

"तुझसे तेरा मर्द ही समझेगा।"

❀ ❀ ❀

मैं अकेली ही इरा की ससुराल गयी और जमाई को समझाया——बहू को ले आ, उसमें कोई दोष नहीं है। बेचारी बीमार थी, अब ठीक है उसके बाल-बच्चा हो जायगा। जमाई ने पश्चात्ताप के स्वर में स्वीकार किया——"ले तो आता, बड़ी भली औरत है बेचारी? रूप भी बहुत अच्छा है। मैंने बरसों राह देखी, पर अब तो और व्याह कर लिया है।"

मैं लौटकर घर आयी। इरा आँखों में आशा लिये मेरी प्रतीक्षा कर रही थी।

इरा को समझाया——"किसी को क्या दोष दें, तुम्हारे आदमी ने दूसरा व्याह कर लिया।"

इरा कुछ बोली नहीं। पथराई हुई आँखों से एकटक मेरी ओर देखती रह गयी।

इरा का व्यवहार और भी बदल गया। अकेली खेतों में चली जाती और काम में लगी रहती। किसी से कुछ न बोलती, न उसके मुख पर कभी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हँसी दिखाई देती। उसे देख मेरा दिल दहल जाता। कभी सिलवा उसकी गोद में बैठने के लिए मचल पड़ता और कभी उसके गले से चिपट जाता तो एक हलकी-सी मुस्कान उसके होंठों पर आ जाती। सिलवा से उसे बड़ा प्यार था। मेरे प्रसव का समय आ रहा था। इरा अब मुझसे और भी दूर-दूर रहने लगी, मानों उसे मेरे प्रति घृणा और क्रोध हो। परन्तु इसका मेरे पास क्या उपाय था!

लड़का पैदा हो गया। बच्चा स्वस्थ तो था, परन्तु पहले लड़कों से कुछ छोटा था। अब मेरी उमर भी तो ढल आयी थी। लड़के का नाम कूटी 'छुटका' रखा गया। बच्चे को सभी प्यार करते थे, इरा सबसे अधिक। इरा तो बदल ही गयी। मुझे तो आशंका थी कि लड़की चिढ़कर लड़के से घृणा न करने लगे। परन्तु उसने कूटी को ऐसे गले लगा लिया, जैसे उसी का हो। उसके मुख पर प्रसन्नता का उत्साह लौट आया।

इरा के बाप ने कहा—"लड़की सँभली तो; बच्चे से उसका दिल बहल गया।"

"हाँ, दिल तो बेचारी का बदल गया।"—मैंने कहा, "परन्तु जाने उसके भाग्य में क्या बदा है!"

"तू सदा चिन्ता में ही पड़ी रहेगी।" ये बोले, "भगवान् की दया समझ कि लड़की का दिल बहल गया।"

मर्द औरत के दिल की बात क्या जानें! मैं चिन्ता कैसे न करती। हमारे पास क्या था जो उसके लिए छोड़ जाते। हमारी आँखें मुँद जाने के बाद लड़कों के ब्याह हो जाने पर उसे कौन सँभालता। देने को दहेज होता तो उसे फिर भी ब्याह देते, अब वह कुँवारी तो थी नहीं, उस पर बाँझ-पने का कलंक। बिना दहेज के उसे कोई क्यों ब्याहता!

इरा की सबसे अधिक चिन्ता बुढ़िया दादी को ही थी। लड़की का ब्याह उसी ने कराया था। अब बेचारी चलने-फिरने से रह गयी थी, फिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी लड़की को आकर देख ही जाती। मूड़ और हाथ-पाँव भी काँपने लगे थे।

"दादी, इसमें दोष तो किसी का भी नहीं—न तुम्हारा, न लड़की का और न लड़की के मर्द का।" मैं बोली,—"अपना-अपना भाग है, अब और आगे का क्या सोचना!"

"ऐसे दिल छोटा न करो।" बुढ़िया बोली—"मैं भी तो अकेली हूँ। मेरी भी तो कट ही रही है।"

मेरी आँखों के सामने बाजार की वह जगह दिखायी देने लगी, जहाँ बुढ़िया टाट पर मूँगफली की छोटी-सी ढेरी लगाये और कुछ तरकारियाँ लिये बैठी रहती थी—"क्या इरा का भी यही हाल होगा?"

"घबराओ नहीं।"—बुढ़िया मेरी ओर देखकर फिर बोली, "जैसी आ पड़ती है, कट जाती है।"

दादी ठीक ही कह रही थीं, जैसी आ पड़ती है लोग काट ही लेते हैं। हम लोग टेनेरी का कोलाहल और बदबू सहने लगे थे, अब उधर ध्यान भी नहीं जाता था। हमारे देहात की शांति और हरियाली कस्बे की चखचख में बदल गयी और सब लोग सह गये। जानती थी कि इरा को भी सहना ही पड़ेगा, परन्तु मन बार-बार छटपटा उठता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[१२]

रविवार के दिन टेनेरी में छुट्टी रहती थी तो अर्जुन और थांबी आकर खेती के काम में पिता का हाथ बँटाते। अपने लड़कों को साथ काम करते देख इन्हें बहुत संतोष होता था। इन्हें लड़कों को खेती का काम—बीज देने, धान रोपने, निराई करने और मेड़ें बाँधने का काम–सिखाने का बड़ा चाव था। अपने इस ज्ञान और चातुर्य का इन्हें बड़ा गर्व था। लड़के और बातों में चाहे जितने चतुर हो गये हों, परन्तु खेती के काम के तो यही धनी थे और वही अपने लड़कों को सिखाना चाहते थे।

बाकी दिन तो लड़के टेनेरी में ही काम करते थे। मुँह अँधेरे कारखाने में चले जाते और अँधेरा होने पर लौटते। उन्हें रुपये रोज की अच्छी मज़दूरी मिल रही थी। अपनी पूरी पगार लाकर मेरे ही हाथ में दे देते, दूसरे लड़कों की तरह उन्हें जुए और दूसरी बदकारियों का शौक नहीं था। मैं तड़के ही उठकर उनके लिए भात और कभी-कभी दाल और तरकारी भी राँध देती। वे अपना खाना साथ ले जाते। साँझ को लौटते तो मैं उनके लिए रखी हुई माँड़, सूखी मछली, कभी छाछ और केले की फली दे देती। उनकी कमाई से उनके लिए कपड़ें भी खरीदने पड़ते। लड़कों को कुरता और लाल पगड़ी पहनना जरूरी था। घर में अब खाने और पहनने-ओढ़ने को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तो हो ही गया परन्तु इरा के दहेज के लिए कुछ जोड़-बचा लेने की कोई चिंता नहीं थी।

कभी खेत में काम न रहता तो इरा का बाप भी मेरे साथ बाजार चला जाता। परन्तु ऐसा दिन कभी ही आ पाता। जब हम एक साथ जाते तो लौटते में टेनेरी में लड़कों से मिलते आते। खाने की छुट्टी का समय होता, लड़के खाने के लिए बाहर आते तो हम उनसे दस-पाँच मिनट बात भी कर लेते। एक दिन सुहावना समय था और हलके-हलके बादल थे। हम लोग बाजार से लौटते में टेनेरी गये तो देखा कि हाते का फाटक बन्द था और संतरी पहरे पर खड़े थे।

दोपहर आयी और बीत गयी,परन्तु कोई भी मजदूर बाहर न निकला। हम लड़कों की राह देखते-देखते थक गये। आखिर मैंने हिम्मत की और पूछने के लिए सिपाही के पास गयी। वर्दी पहने, कमर में पेटी से डंडा लटकाये सिपाही से डर तो लगता ही है।

एक सिपाही से बात की तो उत्तर मिला—"भाग जाओ यहाँ से, नजदीक आने का काम नहीं।"

दूसरे ने जवाब ही नहीं दिया।

तीसरे सिपाही के पास गयी। वह लम्बा-चौड़ा दैत्य-का-दैत्य था। उसने बेपरवाही से उत्तर दिया—"आज छुट्टी नहीं होगी, कारखाने में झगड़ा हो गया है, खाना खाने की भी छुट्टी नहीं होगी।"

मैं घबरा गयी। पूछा—"कैसा झगड़ा हुजूर ? हमारे लड़के तो नहीं इस झगड़े में फँस गये।" सिपाही ने हाथ के संकेत से उत्तर दिया—"उसे क्या मालूम !"

अर्जुन के बाप सहारा देकर मुझे घर तक लाये। हम चिन्ता में बैठे थे। अँधेरा होने के बहुत देर बाद लड़के लौटे। अभी उनकी उमर ही क्या थी, परन्तु दोनों के चेहरे क्रोध से तमतमा रहे थे।

हम लोगों ने डरते-डरते घबराकर पूछा—"कहो कैसा झगड़ा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है?" बेटे तो हमारे ही थे, परन्तु उनसे बात करते झेंप लगती थी।

"झगड़ा क्या है!"––लड़कों ने उत्तर दिया, "मजदूरों ने पगार बढ़ाने को कहा तो उन्होंने खाने की छुट्टी ही काट ली।"

मैंने भूना हुआ चावल और मछली दोनों के सामने रखी, दोनों ही बहुत भूखे थे। सहमते-सहमते मैंने कहा––"पगार बढ़ाने का झगड़ा क्यों करते हो, रुपया रोज बहुत होता है।"

"क्यों, एक रुपये में बनता क्या है! हमें व्याह नहीं करना है, बाल-बच्चे होंगे तो क्या खायेंगे!"––एक बोला, दूसरे ने उसका समर्थन किया, "एक रुपये में होता ही क्या है!"

हम उन्हें क्या समझाते, उन लोगों का ढंग ही बदल गया था। उनके बाप ने मुझे संकेत किया––"चुप रहो। इनकी बात में न बोलो।"

हमारे शांत जीवन की स्तब्ध तलैया में कहीं से एक पत्थर आ गिरा, वह क्षुब्ध हो गयी।

❀ ❀ ❀

आज वह अतीत की स्मृति बहुत धुँधली हो चुकी है। याद ही नहीं आता, या हमें मालूम ही नहीं था कि कब मजदूरों की सभाएँ हुईं जिसमें हमारे लड़कों ने लेक्चर दिये और कैसे बात बढ़ती ही गयी। मालिकों ने क्या-क्या धमकियाँ दीं। हमें तो यह भेद बाद में ही मालूम हुआ था।

एक दिन लड़के काम पर नहीं गये।

"हमारी माँगें नहीं पूरी होंगी तो हम काम नहीं करेंगे। कोई भी मजदूर काम नहीं करेगा।"––थांबी ने कहा, "हम लोग भीख थोड़े ही माँग रहे हैं, अपना हक माँग रहे हैं।"

"यह तो तुम्हारी जबरदस्ती है।"––मैंने समझाया, "कारखाने के मालिक जो चाहेंगे करेंगे, तुम मालिक थोड़े ही हो। तुम काम नहीं करोगे तो बीसियों दूसरे करने को तैयार हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"देख लेंगे।" थांबी ने धमकी के स्वर में उत्तर दिया। मैं चुप रह गयी।

सात दिन तक काम बन्द रहा तो टेनेरी के अफसरों ने सब मजदूरों को बुलाकर हुकुम दे दिया कि जो काम पर नहीं लौटेगा, बरखास्त कर दिया जायगा। लड़के घर लौटे तो पहले से भी अधिक क्रुद्ध थे। दूसरे दिन टेनेरी में काम शुरू हो गया। मजदूरों का हौसला गिर गया, अधिकांश काम पर लौट गये। जो काम पर नहीं गये, उनकी जगह मालिकों ने नये आदमी रख लिये। बेकारों की क्या कमी थी!

जब तक तो हड़ताल का जोश था, लड़के उत्साहित थे; परन्तु अब वे निराश हो गये।

"इन लोगों को कभी अकल नहीं आयेगी।"—अर्जुन ने क्रोध में कहा, "ये लोग अपने पाँव में कुल्हाड़ी मार रहे हैं।"

डाक्टर साहब ने भी कहा था कि लोग समझते नहीं हैं। मैं उनकी बात समझी नहीं थी। अब अपने ही लड़के वही बात कह रहे थे, और मैं कुछ नहीं समझी। आखिर समझने को था क्या! अपने सामर्थ्य से बाहर लड़ने से लाभ ही क्या था। इस लड़ाई में अपना ही नुकसान था। लड़ाई से जब कुछ लाभ नहीं तो लड़ने से लाभ क्या। अर्जुन के पिता से बात की। वे बेचारे भी क्या समझ सकते थे!

हमारे ही लड़के टेनेरी से नहीं निकाले गये थे, दूसरे परिवारों का भी यही हाल था। काली का लड़का भी इन्हीं में था। काली आकर कहने लगी—

"हमारे तो दोनों लड़के बेकार बैठ गये। एक ने ही अकल से काम लिया कि काम पर लौट गया। अब इन्हें कहाँ से खिलाऊँ? खेतों की मिट्टी में क्या धरा है। यह तेरे लिखे-पढ़े बेटों की करनी है। उन्होंने सबको बहकाया है। राम जाने क्या होने को है।"

"हमारी बात तो जरूर मानी जाती।" थांबी क्रोध में बोला, "हमें तो काम पर लौट जानेवाले बेईमानों ने धोखा दिया।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"जरा जबान सँभालकर बोल।" मैंने लड़के को डाँटा, "नहीं तो…।"

लड़कों का बाप भी बहुत जोर से बिगड़ उठा।

"जाने दो, जाने दो, बहुत हो गया"—मुझे बीच-बचाव करना पड़ा, "बहुत हो गया, जो इनकी समझ में आता है, करने दो। अपना किया खुद ही भुगत रहे हैं। तुम काहे को बोलते हो।"

इनका चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। काली अपने घर लौट गयी। लड़के बाप के साथ खेतों की ओर चले गये और मैं नासमझ बैठी सोचती रही।

❀ ❀ ❀

अब फिर केवल खेती की ही कमाई का भरोसा था। सभी तरह की परेशानी थी। कोठार में बचाकर रखा धान समाप्त हो गया। फसल तैयार हो गयी थी, सो किसी तरह निर्वाह हो रहा था। अर्जुन और थांबी प्रायः ही कस्बे में जाते रहते थे। हम लोगों से दोनों कुछ न कहते। पैसा उनकी जेब में था नहीं, इसलिए उनके किसी बुरी लत में पड़ जाने का भय नहीं था। उनको खिन्नता का भी कोई उपाय हमारे पास नहीं था।

एक दिन सुबह ही कपड़ों को धूप दिखा रही थी। सिलवा दौड़ा हुआ आया, उसका चेहरा उत्तेजना से चमक रहा था।

"अम्मा, शहर में ढोल बज रहे हैं।"—लड़के ने हाँफते हुए बताया, "भरती हो रही है।"

मैं लड़के को ओर देखती रह गयी। सहसा याद आ गया कि बहुत वर्ष पहले अर्जुन भी ऐसे ही दौड़ता हुआ आया था और उसने बताया था कि बहुत-सी बैलगाड़ियाँ आ रही हैं। उसके बाद टेनेरी बन गयी थी। सोचा—भगवान् जानें, अब क्या होने को है।

"चल अम्मा, तुझे दिखाऊँ।"—सिलवा ने मुझे पुकारा। उसके दूसरे भाई भी आ गये। लड़का मुझे भूल गया और दूसरे लड़कों के साथ शहर की ओर चल दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अकेली रह गयी तो ढोल की आवाज मुझे भी सुनाई देने लगी, सोचा—मुझे क्या मतलब! मतलब की कोई बात होगी तो मालूम हो ही जायगो। कस्बे तक दौड़ कर कौन जाय। उधर से ध्यान हटाकर दूसरे कामों में लग गयी।

❀ ❀ ❀

अर्जुन और थांबी बहुत रात गये कस्बे से लौटे। दूसरे सब बच्चे सो गये थे, मैं और लड़कों के बाप जाग रहे थे। अर्जुन बोला—"भरती हो रही है। हम लोगों को भी काम मिल जायगा। पगार अच्छी है। घर बैठे भूखे मरने से क्या फायदा!"

"सुनते हैं कि मजदूरी इस गाँव में नहीं मिलेगी।"—उनके बाप ने कहा, "यह तो लंका द्वीप की भरती है।"

"सो तो है। लंका में चाय के बागों की भरती है।"

"चाय के बाग का काम तुम क्या जानो!"

"काम वह सब सिखा लेंगे।"

"सैकड़ों मील दूर है, किराया कौन देगा?"

"किराया भी मिलेगा।"

ये चुप रह गये। लड़के बड़े हो गये थे, अपना रास्ता देख रहे थे, पर मैं कैसे चुप रह जाती। अपने पेट के लड़कों को काले कोसों कैसे चले जाने देती।

"सब बातें हैं।"—मैं बोली, "वहाँ जाकर उन्होंने कुछ नहीं दिया तो क्या कर लोगे?"

"उन्हें मजदूर चाहिए।"—अर्जुन रुखाई से बोला, "उन्हें काम लेना है तो सब कुछ करेंगे।"

"पैसे का इतना लोभ क्या!"—मैं बोली, "हमारे पास नहीं है तो क्या हुआ, पैसे के लिए जान दे दोगे!"

"पैसे के बिना होता क्या है!"—अर्जुन ने उत्तर दिया, "यहाँ हाथ-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर-हाथ धरे बैठे क्या करें! धरती कहाँ है जो खेती करें। यहाँ बैठे रोते रहेंगे तो क्या मिल जायगा!"

"हाथ-पर-हाथ धर कर क्यों बैठोगे!"—मैंने कहा, "लंका तो काले कोसों दूर है, पराया देश, बेगाने लोग। वहाँ तुम्हारा क्या हाल होगा!"

"यहाँ भी तो भूखों ही मर रहे हैं।"—दोनों लड़के एक साथ बोल उठे।

नारियल के छिलके के दिये में तेल चुक गया था। दिया भरभराकर बुझ गया। घर में और तेल था नहीं। हम लोग अँधेरे में ही बैठे रहे। मैंने एक बार फिर समझाया

"एक बार चले जाओगे तो फि घर का मुँह देखने को नहीं मिलेगा।"—मैं बोली, "लंका हजारों कोस है, घर आने को किराया भी नहीं होगा।"

मेरी आँखों से आँसू की धारें बह चलीं, मानों दुखका स्रोत फूट आया हो। लड़के मुझे समझाने लगे कि दूर देश में अच्छी कमाई होगी, दोनों बहुत पैसा बचा पायेंगे और घर क्यों नहीं लौटेंगे। मैं चुप सुनती रही। जानती थी, मुझे बहला रहे हैं।

दूसरे दिन पौ फटते ही लड़के उठे, दोनों ने अपनी गठरी-मुठरी बाँधी और रास्ते के लिए कुछ खाने को ले, चलने के लिए तैयार हो गये। दोनों ने बाप के और मेरे पाँव छुए। हम लोगों ने उन लोगों के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। मन तो जानता था कि लड़के सदा के लिए चले गये।

❀ ❀ ❀

लड़कों के बाप ने समझाया—"समझ से काम लो। लड़के बड़े हो गये, क्या उमर भर उन्हें गोद में ही समेटे रहोगी?"

"यह कब कहती हूँ!"—उदासी से उत्तर दिया, "जो उन्हें करना है करें। यही सोच रही हूँ कि दूर चले गये। दो तो चले ही गये, तीसरा भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जा रहा है। यह भी अपने बाप-दादों के चले आये खेत छोड़कर नौकरी करने जा रहा है। नौकर का काम यह क्या जानेगा!"

"सब सीख लेगा।"—इन्होंने कहा, "लड़का समझदार है, और कौन दूर जा रहा है! भगवान् की कृपा है, घर के नजदीक ही रहेगा। बस दो दिन का ही तो रास्ता है और भले लोगों के यहाँ जा रहा है। डाक्टर साहब ही भिजवा रहे हैं। साहब भरोसा दे रहे हैं तो तुझे क्या डर है!"

"नहीं, डर काहे का है!"—मैंने उन्हें निराशा से उत्तर दिया, "उनकी हम लोगों पर बड़ी मेहरबानी है।"

"तू सदा रोया ही करती है।"—ये बोले, "संसार ऐसे ही चलता है, दुःख भी चलता है, सुख भी चलता है। देख तो फसल कैसे उठ रही है, अबकी तो कोठार भर जायगी।"

ये मुझे पकड़कर बाहर धूप में ले आये। हम लोग धरती पर बैठकर धान के खेतों को देखने लगे। ठंडी-ठंडी बयार चल रही थी और हरे-हरे खेत लहरा रहे थे। पहले हमारे खेतों में बगुले (मछली पकड़नेवाली चिड़ियों के नाम) बहुत मँडराया करते थे। जब से टेनेरी बन गयी, चील-कौए छोड़कर दूसरे पक्षी उड़ गये थे।

ये उठकर गये और खेत से दो-चार बालें तोड़ लाये। मुझे दिखा कर बोले—"देख तो फसल कैसी उठी है! धान भी पड़ने लगी है।"

बालें उनके हाथ से लेकर मैंने हथेली पर मसल डालीं। चावल के महीन-महीन दानें निकल आये। यही हमारे जीवन की आशा थे।

ये फिर बोले—"देखो ना, फसल अच्छी हो रही है, जमींदार का चुका ही देंगे, खाने को होगा और कुछ बच भी रहेगा। जाकर लड़के को भी देख आयेंगे।"

मेरी आँख काशीफल की बेलों की ओर चली गयी, खूब बड़े-बड़े फल धूप में चमक रहे थे। भरोसा हो गया कि जाकर लड़के को देख आयेंगे। हम दोनों आपस में बतियाने लगे।

❀ ❀ ❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक दिन केनी डाक्टर साहब आये। उन्होंने खबर दी कि तीसरा लड़का मजे में था। काम ठीक कर रहा है। उसका मालिक भला आदमी है। लड़के को कोई तकलीफ नहीं है। कहता था स्वयं ही घर पत्र लिखेगा।

"मालिक, आप ही की दया है।"—मैं बोली, "हमें तो आप ही का भरोसा है।"

"हमने क्या किया तुम्हारा, कुछ भी नहीं।"—डाक्टर साहब बोले।

डाक्टर साहब का चेहरा थका हुआ रूखा-रूखा सा दीख रहा था। मैं सोच रही थी, बेचारे हम लोगों की खातिर यहाँ परदेश में अकेले पड़े हुए हैं। कभी तो इनका दिल घबड़ाता होगा।

"अकेला क्या!"—डाक्टर बोले, "हम कभी अकेला नहीं है, तुमने देखा नहीं, कितनी भीड़ हमारे दरवाजे पर रहती है। हमें कभी अकेले देखा!"

"मालिक, यह मतलब नहीं।"—मैं धीरे से बोली और फिर उनकी ओर देखती चुप रह गयी।

डाक्टर भी चुप रह गये। उनके माथे पर बल पड़ गये। मैं मन-ही-मन डरी, मेरी बात को बुरा मान गये। क्या कह बैठी!

"ऐसा तुमने पहले कभी नहीं कहा।"—डाक्टर साहब मेरी ओर देखकर बोले, "तुम तो बहुत बरस से अपने बाप के घर से हमको जानती हो।"

मन में सोचा, कभी कहा नहीं, सो तो ठीक है, हौंसला ही नहीं पड़ा। ऐसे चुप-चुप से रहते हैं और फिर बड़े आदमी हैं। मैनें उत्तर दिया—

"मालिक, कभी कहते नहीं बना। हम छोटे आदमी आप से क्या कहेंगे। मालिक कभी बहुत दिन में तो दिखाई देते हैं। पूछने की हिम्मत ही नहीं हुई।"

डाक्टर साहब कुछ पल चुप रहे, फिर बोले—"तुमने पूछा है तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुनो, हम भी आदमी हैं, हमारे भी घरबार है, औरत है, बाल-बच्चे हैं। हमने सबको छोड़ दिया है। हम किसी के नौकर नहीं हैं। मन में आता है तो चले आते हैं, थक जाते हैं तो चले जाते हैं। जब तक हौसला होता है, तुम लोगों में आकर काम करते हैं और जब दिमाग परेशान हो जाता है, भाग जाते हैं। तुम्हारे दुःख और गरीबी का तो कोई अंत नहीं है, जितना बन पड़ता है, करते हैं······।"

मैं चुप साहब की ओर देखती रही, बहुत गुस्से में बोल रहे थे, परन्तु उनके मन की दया तो मैं जानती थी। वह भी उसे छिपा नहीं सकते थे।

"हमने तुमसे ऐसे ही कह दिया, हमको क्रोध आ गया।"—साहब कुछ नरमी से बोले, "तुम किसी से कहना नहीं।"

"नहीं मालिक, ऐसा कैसे हो सकता है!"—मैंने विश्वास दिलाया, "मैं किसी से क्यों कहूँगी!"

"कहना नहीं, खयाल रखना।"

"नहीं मालिक, कभी नहीं।"

साहब उठे और लम्बे-लम्बे कदम रखते कमर झुकाये चल दिये। विचित्र मनुष्य थे वह। उन्हें कभी समझ नहीं सकी। वह अपने आपको समझने भी नहीं देते थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[१३]

उस बरस बरसात पिछड़ गयी, पखवाड़े भर नहीं बरसा। हम लोग आकाश की ओर आँखें उठाये देखते रहते, परन्तु कहीं बादल का नाम नहीं था। किसान धरती पर लेट-लेट कर भगवान् को गोहराते रहते। मैं एक काशीफल और चावल के दाने ले देवी के चौतरे पर पूजा करने गयी। देवी के चरणों में लेट-लेट कर गोहार की। जान पड़ा, देवी पसीज गयी हैं, परन्तु तब भी पानी नहीं बरसा।

"देखो, कल बरस जाय!"—इन्होंने कहा, "अब भी बरस जाय तो कुछ हो जाय।"

हम लोग आँगन में खड़े आकाश की ओर आँखें लगाये थे। सपाट नीला, कहीं बादल की एक चिन्दी भी नहीं। पास-पड़ोस के सभी किसान मुँह ऊपर उठाये देख रहे थे। एक ही बात सबके मुँह में थी—देखो कल ही बरस जाय!

कई कल आये और गये, पानी नहीं बरसा। ये निराश होते जा रहे थे, मुँह से कुछ न बोलते। पौ फटते ही आँगन में बैठ आकाश की ओर देखने लगते।

धान के खेतों में पानी सूखता जा रहा था, धान झुकते जा रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गाँव का नाला भी सूखता जा रहा था, बस पतली-सी धार ही रह गयी थी। कुआँ कभी का सूख चुका था। धान की बालियों पर दाग आने लगे थे। हमारी आँखों के सामने ही धान की हरियाली—हमारे जीवन की आशा—निराशा की तरह काली होती जा रही थी।

फसल की कटाई का समय आ गया, परन्तु काटने को कुछ नहीं था। बरस भर की कमाई यही फसल थी और यह फसल बेकार भूसे की थी।

जमींदार का कारिंदा शिवजी लगान-वसूली के लिए आया। बेचारा आदमी भला था। फसल की हालत देख उसका भी मुँह लटक गया।

"देख रहे हो मालिक, फसल तो सब बेकार गयी। मुट्ठी भर धान नहीं।"—इन्होंने कहा।

"खेत तो तुमने लगान पर लिये थे।"—शिवजी बोला, "रुपये और धान देने का तो पट्टा लिखा था, सो तो देना ही होगा। हम खाली हाथ कैसे लौट जायँ!"

इनकी गर्दन झुक गयी। मैं आकर उनके बराबर खड़ी हो गयी, इरा और बच्चे भी आ गये।

"मालिक कुछ पैदा ही नहीं हुआ।"—इरा के बाप फिर बोले, "मालिक देख रहे हैं, सब फसल खेतों में गिरी पड़ी है। पानी बरसा नहीं, नाले में भी पानी नहीं था।"

"पर खेत तो ठेके पर लिये थे, तुम खेत न लेते।"

"जो मालिक का हुकुम। पिछली फसल भी कम ही हुई थी। पिछला भी कुछ बचा नहीं है।"

"भाई हम क्या जानें, तुम्हारा काम तुम जानो।"—शिवजी ने मुँह मोड़कर उत्तर दिया, "हमें मालिक का हुकुम पूरा करना है।"

"जो मालिक का हुकुम हो।"

"लगान नहीं दोगे तो खेत दूसरे के हो जायँगे।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"मालिक, खेतों को छोड़कर हम कहाँ जायँगे! जिन्दगी इन्हीं खेतों में बीत गया। हमारे लिए और ठौर कहाँ!"

"सो तुम जानो, हमें तो मालिक का हुकुम पूरा करना है।"

ये सामने खड़े काँप रहे थे, हाथ जोड़कर बोले—"मालिक, अगली फसल तक माफी मिले, मैं सब दे दूँगा।"

"आधा अभी दे दो।"—शिवजी बोला, "हमसे जो बन पड़ेगा तुम्हारे लिए करेंगे।"

शिवजी जल्दी में जवाब दे घूम गया।

"कारिन्दा बेचारा भी क्या करे"—मैं बोली,' 'वह भी तो नौकर है।"

"इसी बात की तो नौकरी है।"—इरा के बाप क्रोध में बोले, "मालिक खुद आकर कैसे उगाहें? हमारे पेट काटने की ही तो नौकरी है। मालिक अपने हाथों भूखे मरतों से कैसे छीनें! नौकर ही छीनकर उन्हें देगा। हम छप्पर में जाकर अपनी सम्पत्ति बटोरने लगे। कुछ मिट्टी के बरतन थे और दो पीतल के, टीन का संदूक था जो मैं मायके से लायी थी। दो कुरते बड़े लड़के छोड़ गये थे। सेर भर दाल और पाव भर लाल मिर्च थी। बेचने को बस यही था।"

"यही बेंच डालें।"—इरा के बाप बोले, "इसके बिना भी सिर जायगा। खेतों के बिना गीदड़ों की तरह कहाँ मारे-मारे फिरेंगे!" कुछ पल वे अपनी सम्पत्ति की ओर एकटक देखते रहे। उनकी आँखें छलक आयीं, बोले—"इतने से क्या बनेगा? बैल बेचे बिना नहीं बनेगा।" इनकी आँखों से आँसू बह गये।

हम लोगों ने बैलों की कीमत जोड़कर हिसाब लगाया। बार-बार हिसाब लगाया और देखा कि लगान का रुपया पूरा नहीं हुआ। "साड़ियाँ भी तो पड़ी हैं।"—मैंने सुझाया, "बिलकुल नयी हैं, अभी पहनी कहाँ। उन्हें बेच डालें।"

मैं भीतर से लाल साड़ी निकाल लायी। यही साड़ी पहनकर मेरा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और इरा का व्याह हुआ था। अर्जुन और थांबी जब टेनेरी में नौकरी कर रहे थे तो एक साड़ी और धोती खरीद ली थी, वह भी ले लीं। सब कुछ बाँध हम लोग शहर की ओर चले।

"कहो रुक्मिनी कैसे आयीं ?"—बिसवास झूठी हँसी में दाँत निकालकर बोला, "वर्षों बीत गये दिखाई नहीं पड़ीं। तुम्हारी तरकारी की बड़ी याद आती रही, कहो आज क्या लायी हो ?"

"मालिक तरकारी है कहाँ !"—बिसवास के ताने की उपेक्षाकर मैंने उत्तर दिया, "पानी की बूंद नहीं बरसी। जो कुछ बोया-बुआया था, सब कुछ धूल में मिल गया।"

"हाँ, हाँ, ठीक ही कहती हो।"—बिसवास ने स्थिति परखने के लिए मेरी ओर घूरते हुए कहा, "समय तो बड़ा खराब है।"

तेरे लिए क्या खराब है—मैंने मन में सोचा, लोग जितने दुखी हों उतना ही तुझे उन्हें लूटने का मौका मिले।

"मालिक, जमीन का लगान देना है।"—मैंने कहा, "लड़कों के दो कुरते हैं, वह तो चले गये, अब किस काम आयेंगे ! ले आयी हूँ ! दो साड़ियाँ हैं, लड़कों के बाप की धोती है, बिलकुल नयी समझो। साड़ियों पर बहुत बढ़िया काम है, बस दो-चार बार पहनी हुई। बेचने के लिए लाई हूँ।" कपड़े निकाल कर उसके सामने रख दिये।

बिसवास ने कपड़ों को टटोलकर देखा, साड़ी को उठाकर आँखों के समीप ले जाकर उसकी जरी देखी, कुरतों को फैलाकर परखा कि घिसे हुए तो नहीं हैं और फिर बोला—"क्या लोगी इस सबका।"

"तुम्हीं बोल दो मालिक।"

"तुम तो बोलो क्या माँगती हो, फिर देखेंगे।"

"बस जमीन का लगान भर हो जाय।"

"कितना है लगान तुम्हारा।"

"यह जानकर क्या करोगे मालिक।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विसवास चुप रह गया। मैंने ऊबकर कहा, "मालिक, तुम नहीं खरीदते हो तो फिर और कहीं जाऊँ।"

"तुम तो सदा उजलत में रहती हो।"—विसवास अपनेपन का पाखंड कर बोला, "जरा सोच तो लेने दो।"

"ऐसा क्या सोचना है।"—मैं बोली, "अच्छा माल है, तुम नहीं तो दूसरा खरीद लेगा।"

"कोई नहीं खरीदेगा।"—विसवास बोला, "तुम्हारी तरह बीसियों लोग आये, कपड़ा-लत्ता लेकर, घूम-फिर कर फिर यहीं आये। जानती नहीं हो, कैसा समय है? अब, यह सब कौन खरीदता है!"

"होगा मालिक।"—मैं उकताकर बोली, "तुम लेते हो तो दाम बताओ, नहीं तो अपना रास्ता देखूं। टेनेरी के मुसलमान बाबू की बहू खरीद ही लेगी। पहले भी उसके हाथ बेच चुकी हूँ।"

"ठीक ही कह रही होगी।" बिसवास बोला, "रुक्मिनी हमारा-तुम्हारा पुराना लेना-देना चला आ रहा है। जानती हो, सदा तुम्हारा लिहाज किया! तुम्हारे खातिर तीस रुपये दे दूंगा, इससे एक पैसा भी ज्यादा कोई नहीं देने का।"

"वाह मालिक।"—मैंने जवाब दिया, "तुम भी क्या कहते हो। पचहत्तर रुपये से एक धेला कम नहीं लेने की। तुम्हें न जँचता हो तो मैं जाऊँ।"

मैं अपनी दृढ़ता दिखाने के लिए कपड़े उठाकर गठरी बाँधने लगी। मन-ही-मन सोच रही थी कि बिसवास रोक ले। कपड़ों को और बेचती भी कहाँ! तीस रुपये में हमारा बनता भी क्या! यह भी सोच रही थी कि लगान पूरा नहीं पड़ता तो साड़ियाँ क्यों बेचूं।

मैं गठरी उठाकर दरवाजे से चली जा रही थी कि बिसवास ने पुकारा—"अच्छा रुक्मिनी सुनो। "तुम्हारा कहा ही दिये देते हैं, तुम्हारा काम बन जाय।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं थम गयी। बिसवास भीतर की कोठरी में चला गया। कुछ पल में मुँह बनाये और हाथ में बड़ा-सा बटुआ लिये लौटा। उसने डोरी खींचकर बटुआ खोला। नोट और रुपये निकालकर दो बार गिने और बोला—

"तुम्हें मुँह माँगा दे रहा हूँ। हमारा मतलब है तुम्हारा काम बन जाय।"

मैंने रुपये आँचल में बाँध लिये और घर लौट चली। संतोष था कि संकट का उपाय हो गया।

इरा का बाप भी बैल, बर्तन-भाँड़े और माल-मत्ता बेचकर लौट आया था। हमने सब मिलाकर गिना तो १२५ रुपये हुए। आधा लगाट भी न बन पाया।

बीज का धान रखा हुआ था। इन्होंने कहा—"उसे भी बेच डालो।"

"तो बोयेंगे क्या?"—मैं बोली, "बीज ही नहीं होगा तो धरती का क्या करेंगे, बोयेंगे क्या?"

"बीज तो हो जायगा, धरती नहीं होगी तो बोयेंगे कहाँ! बीज तो खरीद भी लेंगे। मजदूरी कर लूँगा, जाने लड़के ही······।"

तुम्हें मजदूरी कौन देगा—मैंने अपने मन में सोचा—"लड़का रोज जाकर टेनेरी के फाटक पर खड़ा रहता है, अर्जुन और थांबी का भाई है, इसलिए उसे कोई नहीं रखता। उनके बुड्ढे बाप को कौन काम दे देगा? हजारों जवान छोकरे तो मारे-मारे फिर रहे हैं।"—मैंने समझाया "बीज बेचकर मिल ही क्या जायगा, अपनी किस्मत क्यों बेचे डालते हो?"

"बेचूँ नहीं तो करूँ क्या!"—ये क्रोध में उबल पड़े, "तू क्या समझती है, मुझे सूझता नहीं, मैं अंधा हूँ? मैं नहीं जानता कि बीज नहीं होगा तो बोयेंगे क्या······?"

मैं जानती थी कि यह गुस्सा मुझ पर नहीं अपने दुर्भाग्य पर था। फिर भी अपने को रोक नहीं सकी। सिसक-सिसक कर रोने लगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"भगवान् का ही सहारा है।"––रोते हुए मैं बोली, "अगली फसल तक हौंसला रखो, देखो वे क्या करते हैं।"

"तू जान जैसा तू चाहे।"—इन्होंने कहा, "हमें तो करना ही है, फिर चाहे जो भी हो, बस तू रो मत और न सता।"

बेचारे बहुत दुखी हैं—मैंने सोचा और आँखें पोंछ लीं। दुख में कड़ी बात भी मुँह से निकल जाती है। मैं भीतर जाकर लेटी और रुपया मेरी कमर में बँधा था। ऐसे ही लेटे-लेटे नींद आ गयी। सोते-जागते रात कट गयी।

शिवजी सुबह ही आ गया। इन्होंने सब रुपया उसके सामने रखकर गिन दिया।

"एक सौ पच्चीस रुपये।"––इन्होंने कहा, "मालिक आधा भी नहीं है, पर अब बीज भर को धान बाकी है, और कुछ नहीं।"

"मालिक बीज ही बेंच डालेंगे तो क्या, पाँच रुपया और बन जायगा। उससे क्या बनेगा! मालिक, हम अगली फसल तक ब्याज दे देंगे।'

"भाई, मेरे हाथ में क्या है।"—शिवजी बोला, "लगान तो मालिक का है। वहाँ मैं क्या जवाब दूँगा? तुम लोगों ने आधा देने को कहा था।"

"मालिक इतनी दया हो जाय।"––इरा के बाप ने गिड़गिड़ाकर कहा, "अगली फसल पर ब्याज समेत पूरा चुका देंगे।"

बहुत देर खड़े-खड़े हम हाथ जोड़ शिवजी के सामने गिड़गिड़ाते रहे। आखिर शिवजी मान गया, रुपया लेकर चल दिया। पलटकर कुछ झेंपता हुआ बोला—"भाई नौकरी तो नौकरी है। अपना पेट भी पालना है। मजबूरी है, भगवान् तुम्हारा भला करे।"

"भगवान् तुम्हारा भी भला करे"—मैंने धीमे से कहा। और क्या कह सकती थी? बोली, "हम तीनों पर दया करते हो, भगवान् तुम्हारा भला करे।" शिवजी चला गया।

पानी नहीं बरसा, धरती प्रचण्ड सूर्य की किरणों में जलती रही।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहीं कोई अंकुर फूट भी पड़ता तो तुरन्त झुलस जाता। धरती में चिटक-चिटक कर दरारें पड़ने लगीं। घास जल गयी और पेड़ भी सूखने लगे। भेड़, बकरी और ढोर नाले पर बैठे रहते थे और पानी बिना प्यासे मर गये। गिलहरियाँ और गिरगिटें भी प्यास के मारे जीभ निकाले हाँफती रहतीं।

कस्बे में टेनेरो के मजदूरों के लिए एक तालाब बना दिया गया था। सूखा पड़ा तो तालाब से दूसरे लोगों को भी थोड़ा-बहुत पानी बाँट दिया जाने लगा। मैं सुबह ही घड़ा लेकर पानी के लिए चली जाती; दोहाई देती कि हमारे घर में इतने आदमी हैं तो आधा घड़ा मिल जाता था। कभी पानी बाँटनेवाला कुछ भला आदमी होता तो कुछ अधिक मिल जाता। पानी के कष्ट के कारण कुछ स्त्रियाँ घर के ज्यादा आदमी बताने लगीं। दूसरी स्त्रियाँ डाह से चुगली खाने लगीं। औरतों में लड़ाइयाँ होने लगीं। तब हुकुम हो गया कि सब लोग आकर अपना-अपना पानी लें। बच्चों और बूढ़ों को भी पानी के लिए जाना पड़ता। इससे धोखा तो बन्द हुआ परन्तु बीमारों और बूढ़ों के लिए मुसीबत हो गयी।

पानी फिर भी नहीं बरसा। मन की आशा और खेतों के धान दोनों सूख गये। लोग निराश होकर मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे। तब एक दिन बड़े जोर की आँधी चली और भयंकर वर्षा आरम्भ हो गयी। प्यासी धरती से जितना बन पड़ा, पानी पिया। धरती अघा गयी तो पानी बहने लगा। इतना पानी बरस जाने पर भी किसानों के सूख गये मन हरे न हो सके। दूसरी फसल का भी समय निकल गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[१४]

वर्षा थमी तो संतुष्ट धरती के हृदय में पड़ी हुई दरारें भर गयीं। संतुष्ट खेत जल पीकर बीज माँग रहे थे। हम लोग अपना धान लेकर देवी के चौरे पर गये। उनका आशीर्वाद माँगा और नयी फसल के लिए धान बो दिया। महीने भर में बीज फूट गये और कल्ले खूब जोर से निकले। अँखुए खेतों में रोप दिये। अकेले दूर-दूर लगाये अँखुए घने पौधे हो गये और खेत भर गये। खेत की इस घनी हरियाली में ही हमारा भविष्य था।

आशा और आशंका दोनों ही किसानों के आधे-आधे हृदय पर अधिकार जमाये रहतीं। कभी एक जीत जाती है और कभी दूसरी। किसान आशा की ही बात करता है, परन्तु आशंका से भी कभी मुक्ति नहीं पा सकता। भूख का भय सदा ही उसकी पसली में कोहनी गड़ाये रहता है। तनिक-सी चूक से वह निराशा के गढ़े में गिर सकता है। किसान का सर्वस्व भाग्य की दया पर है। उसे भय किस बात का नहीं? सब तरफ भय ही भय।

धान पकने से पहले ही बटोरकर और सुखाकर रखी हुई मछली चुक गयी। घर में पैसा भी नहीं था। पाई-पाई लगान में चली गयी थी। बेच डालने को भी कुछ नहीं था। सूखे में कछियारी भी सूखकर बरबाद हो गयी थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अब अपना गुप्त धन निकाले बिना दूसरा उपाय नहीं था। पाँच सेर चावल मैंने छिपाकर रख छोड़ा था। बड़े-से-बड़े संकट में जब धरती के लगान के लिए बदन के कपड़े तक बेच दिये तब भी उसे बचाये रही। अब चावल निकालना ही पड़ा। निकालकर तौला, पूरा पाँच सेर था। बहुत सोचा, कम से-कम कितने में एक दिन सर जायगा, उस हिसाब से मुट्ठियाँ भरकर ढेरियाँ लगा दीं। चौबीस ढेरियाँ लगीं। एक बार सोचा, ढेरियों में थोड़ा-थोड़ा घटाकर पूरी तीस बना लूँ तो फसल तक के दिन पूरे हो जायँ। फिर वैसे ही रहने दिया। छुटका पहले ही बीमार था। भूखा रहता तो हालत और खराब हो जाती और हम लोग भी फसल से पहले भूख से निढाल हो जाते तो क्या लाभ होता!

मैंने सोचा, चौबीस दिन के लिए तो है ही, फिर भगवान् मालिक है। मन को भगवान् का ढाढ़स दिला देने पर भी भीतर ही-भीतर आशंका से काँपती रहती, परन्तु भगवान् का भरोसा कर लेने के अतिरिक्त और मार्ग ही क्या था!

दिन तो कट जाता परन्तु रात भारी हो जाती। बच्चे और उनका बाप, सभी भूख से या भय से करवटें लेते और बड़बड़ाते रहते। एक दिन रात ये नींद में उछलकर बैठ गये। मैंने जाकर इनके कंधे पर हाथ रख कर हिलाया तो जाग उठे।

"क्या स्वप्न देख रहे थे?"—मैंने कहा, "सो जाओ।"

"बड़ा बुरा स्वप्न देखा"—इन्हें पसीना आ रहा था। ये घबराकर बोले, "देखा, सब धान सूख गया, फसल मारी गयी, हे भगवान्·····!"

नींद और घबराहट में उनका बोल ठीक से नहीं निकल रहा था। आतंक मुझ पर भी छा गया, परन्तु उन्हें और अपने को सँभालने के लिए बोली—"भगवान् का भरोसा करो, वही रक्षा करेंगे।"

ये सान्त्वना पाकर लेट गये और बोले—"तुम बड़ी भली औरत हो। सच कहता हूँ, तुम्हारा ही सहारा है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं भी जा लेटी। बड़े भयावने स्वप्न आने लगे। स्वप्न में देखा कि एक बिना मूड़ का आदमी चोर की तरह हमारे घर में घुस आया है और हमारा चावल चुराकर लिये जा रहा है। मैं जानती थी यह स्वप्न ही है। दूसरे दिन फिर वही स्वप्न देखा और रोज देखने लगी। मुझे चोर का डर लगने लगा। किसी का भरोसा न करके रात का अँधेरा हो जाने पर ही चावल निकालती। दाने एक हाथ से दूसरे हाथ में छोड़ती जाती। इससे बड़ा सुख मिलता। अगले दिन का भाग निकालकर चावलों को फिर दबा देती। चावलों को दो गठरियों में बाँध दिया था। एक गठरी कुठार में दबायी थी और दूसरी अपनी झोपड़ी से कुछ दूर।

कई बार सोचा, कैनी साहब के यहाँ जाऊँ, वह अवश्य सहायता देंगे। दो बार गयी भी, परन्तु अवसर की बात, साहब मिले नहीं, हफ्तों से बाहर गये हुए थे। पाँवों में शक्ति नहीं रही थी, इसलिए इतनी दूर जाते भी न बनता था। बिसवास से तो उधार मिल जाता, परन्तु धरोहर देने को हमारे पास था क्या और ब्याज भी कहाँ से देते।

सात दिन बीत गये और बहुमूल्य चावल के सात भाग खर्च हो गये। आठवें दिन मैं चावल में पानी डालकर राँध रही थी तो कुन्ती आ गयी। वर्षों से, जब से उसका नंगापन देखा था, उससे भेंट नहीं हुई थी। इस बीच कुन्ती इतनी बदल गयी थी कि मैं उसे पहचान न पायी। चेहरा बिगड़ गया था, कहीं झुर्रियाँ पड़ गयी थीं और कहीं मानों खाल खिंच गयी थी। घिसी-फटी साड़ी में उसकी छातियाँ पिचककर झूलती दिखाई दे रही थीं। उसका छैले-अलबेलेपन का नखरा मिट गया था। मन में आया, एक दिन तो सभी औरतों का यही हाल होना है, यह बेचारी जल्दी ही गिर गयी।

"बैठो तो।"—मैंने कहा और पूछा, "कहो कैसे आयीं?"

कुन्ती बोली नहीं, आगे बढ़कर चूल्हे में रखी हँडिया में झाँकने लगी। "तुम्हें तो खाने को खूब है।"—उसने कहा, "लोग तो भूखों मर रहे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"क्या है, किसी तरह निबाह रहे हैं।"

"तुम्हारा मर्द तो है।"

"हाँ, क्यों ?"—मैंने विस्मय से उसकी ओर देखा "यह क्यों पूछ रही हो ?"

"मेरा तो चला गया।"—कुन्ती कंधे सिमटा कर बोली, "सोच रही थी, तुम्हारा क्या हाल होगा ?"

मन में दया आयी। सोचा, बिचारी बड़े दुःख में है।

"तुझसे कोई माँगने थोड़े आयी हूँ"—कुन्ती बिगड़कर बोली, "मर्द मेरा भी है, उसने दूसरी औरत रख ली है।"

मैं कुन्ती के मर्द की बात सोचने लगी। सीधा-सादा, गौखा, परन्तु तन्दुरुस्त आदमी था। उसने दूसरी औरत कैसे कर ली होगी। फिर कुन्ती के भी लच्छन याद आये; उसके रंगे हुए होंठ और चन्दन लगे कूल्हे। जाने कितने आदमियों के साथ सोई होगी। उसके मर्द को कब तक पता न चलता। मैं चुपचाप उसकी ओर देखती रह गयी।

"आँखें फाड़-फाड़ कर क्या देख रही है?"—कुन्ती आँखें चढ़ाकर बोली, "खूब देख ले, तुझमें तो रूप कभी था नहीं।"

मैंने आँखें झुका लीं, कुछ उत्तर न दे सकी।

"तुझे देखने के चाव से नहीं आयी हूँ।"—कुन्ती फिर बोली, "और न अपने को दिखाने आई हूँ। कई दिन से खाया नहीं है, कुछ खाने को दे।"

हँडिया में करछी चलाकर मैंने थोड़ा-सा माड़ निकालकर एक प्याले में उसे दे दिया। कुन्ती उसे एक बार में ही पी गयी और प्याला धरती पर रख दिया।

"थोड़ा भात भी दे, कई दिन से नहीं खाया, रोज-रोज कहाँ आ पाऊँगी। कई दिन से मौका देख रही थी कि तू अकेली हो तो आऊँ।"

"भात कहाँ से दे दूं !"—मैंने कहा, "लड़के और लड़के के बाप को क्या देंगे। उन लोगों को कैसे भूल जाऊँ। घर में और है ही क्या।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"कुछ तो दे।"—कुन्ती ने आग्रह किया, "पेट में कुछ नहीं जायगा तो कैसे चल पाऊँगी! जब तक चलने-फिरने लायक न हो जाऊँ, मुझे मर्द घर में क्यों रखेगा?"

सोचा—औरत पागल है, इसे अब घर में कौन रखेगा। औरत एक बार घर से निकली तो कभी लौट सकती है! उसे समझाया—"देख, भात तो है नहीं, तू आ जाया करे तो माँड़ दे दिया करूँगी। दो मुट्ठी चावल में मुझे घर भर का पेट भरना है, लड़के हैं एक लड़की है। तू बाल-बच्चे-दार है, जानती है कि पहले बच्चों को ही तो दूँगी। तू अपने लड़कों के यहाँ क्यों नहीं चली जाती?"

"मेरे लड़के?"—कुन्ती ने खोई हुई आँखों से मेरी ओर देखा और बोली, "लड़के क्या मेरे ही हैं। अब तो उनकी अपनी बहुएँ हैं। उनके यहाँ कैसे चली जाऊँ?"

"आखिर तेरे बेटे हैं!"

"मैं किसी के आगे हाथ नहीं पसारूँगी।"—उसने क्रोध में कहा, "मेरे अपने हाथ-पाँव हैं, बस, जरा जवानी लौट आये।"

मैं चुप रह गयी। और कहती भी क्या। इससे अधिक कहा भी क्या जा सकता था!

कुछ पल मेरी ओर देख कर कुन्ती तीखे स्वर में बोल उठी—"तो कब तक तेरा मुंह देखती रहूँ?" और भी निकट आकर उसने मेरी आँखों की ओर घूरकर पूछा। उसके रोगी विरूप चेहरे से मैंने आँखें फेर लीं। वह बोल उठी—

"भात देती है तो दे, नहीं तो तेरे मर्द से तेरी सब करतूतें कहती हूँ।"

"जा, जा, वह मुझे खूब जानता है।"—मैंने क्रोध में उत्तर दिया।

"जानता है? नहीं जानता ना?"—कुन्ती फिर मुझे घूरकर बोली, "उसे नहीं मालूम कि रात में कहाँ-कहाँ घूमती हो। किससे अकेले में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छिप-छिप के बातें होती हैं। कोई तुझे मुफ्त में ही तो दूध और मिठाई ला-ला कर नहीं देता।"

"चुप रह छिनाल!"—मैं क्रोध में चिल्ला उठी और दोनों हाथ से कान ढक लिये; परन्तु मस्तिष्क ऐसे क्षुब्ध हो गया मानों किसी ने पिंजड़े में पकड़कर बहुत से नये पक्षी भर दिये हों। वैसे ही कई स्मृतियाँ कई कोनों से मस्तिष्क में फड़फड़ा उठीं—उस रात जब डाक्टर साहब के यहाँ से मैं लौटी थी तो इरा ने मुझे कैसे देखा था, लड़के ने कैसे विद्रूप के स्वर में कहा था—साहब लोगों की बात कौन नहीं मानेगा, खासकर औरतें! हाय मैं मूर्ख, तब चुप क्यों रह गयी, तभी क्यों नहीं वह भ्रम मिटा दिया था।

"भात देती हो कि नहीं?"

कुन्ती के ये शब्द मेरे कानों में भाले की तरह गड़ गये और ऐसा जान पड़ा कि मैं भयंकर तूफान में सूखे पत्ते की तरह उड़ी जा रही हूँ।

सोचने लगी—इस बेईमान छिनाल का क्या भरोसा, इस संकट में परेशानी से उनका दिमाग यों ही खराब हो रहा है, कहीं उन्होंने संदेह कर लिया कि मैं उन्हें धोखा दे रही हूँ······। मन में आया इस छिनाल का गला घोंट दूँ······। एक चीख-सी सुनाई दी। किसी बच्चे की आह है या पक्षी की, समझ नहीं पायी। मस्तिष्क में गूँज और फड़फड़ाहट भर गयी और मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। कुन्ती सामने बैठी प्रतीक्षा कर रही थी। उसे विश्वास था कि उसके पंजे से मेरा गला छूट नहीं सकता।

कुन्ती डेढ़ सेर चावल ही लेकर गयी, शेष बचे चावल में से नौ दिन से अधिक नहीं सर सकता था। मैं बेबस थी। चावल जैसे दिया, मैं ही जानती हूँ। अपने प्रति घृणा और क्रोध से भी मर जाने की इच्छा थी।

उस रात बहुत देर तक बाहर जाने का साहस नहीं हुआ। आशंका थी कि कुन्ती कहीं छिपी देख रही होगी। मन में दृढ़ निश्चय किया कि दुष्टा जो कर सकती है, कर ले—मैं भी उसके पंजे में नहीं आऊँगी। मैं क्या उससे कम हूँ। अँधेरा घना हो गया तो मैं उठी, चुपचाप दबे पाँव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाकर घर के बाहर दबाई हुई चावल की गठरी धरती खोदकर निकाली। बड़े चाव से गठरी पर दोनों हाथ रख दिये, हृदय उमड़ा आ रहा था। गले से एक कराह-सी निकली पड़ती। गठरी खोलकर चावल के दानों को हाथ में लेकर दुलराने लगी। दो सेर चावल गठरी में रखा था, परन्तु यह तो पाव भर ही था।

जान पड़ा, किसी ने मेरी आँतें खींच ली हों, सिर चकरा गया। यह किसने चुरा लिया, किसी को तो मालूम नहीं था, किसे मालूम हो सकता था, हाय ! कौन राक्षस मेरा चावल ले गया। किसी के रोने की आवाज कानों में आयी। मैं डर गयी, तब जाना कि रोने की पुकार मेरी ही थी। मैं और भी डर गयी कि किसी ने मेरी रोने की आवाज सुन न ली हो, किसी ने मुझे देख न लिया हो। आँखे फाड़-फाड़कर अंधेरे में चारो ओर देखा, कोई मुझे देख तो नहीं रहा है। कोई नहीं था, कोई शब्द भी नहीं था। अपने ही हृदय की धड़कन आहनी पर हथौड़ों की चोट की तरह सुनाई दे रही थी। सिर पकड़ कर सोचने लगी, चावल किसने चुरा लिया ? किसी को भी तो मालूम नहीं था। क्या कुन्ती चावल भी चुरा ले गयी?... उसे तो कुठार में रखे चावल का ही पता था। क्या घर में से ही किसी ने चोरी कर ली, यह विश्वास न कर सकी। परन्तु बार-बार यही विचार आता था कि घर में से ही किसी ने चोरी कर ली। और कौन कर सकता था। सभी पौ फटती जान पड़ी। कितना समय बीत गया, सुध न रही। सुध आयी तो उठी, उठा न गया, घुटने और पीठ जकड़ गयी थीं।

झोपड़ी में लौटी तो ये भीतर नहीं थे। धान की खेत की मेड़ पर बैठे दिखायी दिये। इन्हें जब नींद आती थी तो खेतों में ही जा बैठते थे। दोनों लड़के भी सो रहे थे। छुटका इरा के साथ सोया हुआ था। इरा की बाँह बच्चे की पीठ पर थी। मैंने इरा को जगाने के लिए हिलाया, परन्तु छुटका ही पहले उठा और रोने लगा। मैंने उसे उठा लिया और बाहर आँगन में छोड़ आयीं, लौटी तो सब उठ गये थे। तीनों की ओर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैनें देखा और मुझे गुस्सा आ गया——इन्हीं तीनों में से किसी ने चोरी की है; परन्तु किसने ? मैं चोरी को पहचान लेने के लिए घूर-घूर कर उनकी ओर देखती रही, परन्तु पहिचानती कैसे ? मेरी नजर से तीनों सहम गये।

"बोलो-बोलो" मैं चीख उठी, "किसने चुराया चावल।" कोई नहीं बोला। मैं क्रोध में पागल हो उठी। इरा डरते-डरते बोली–"हम अपनी ही चीज की चोरी क्या करते !"

"तो मैं क्या झूठ बोल रही हूँ?"–मैं बावली होकर चीख उठी, "क्या मैनें खा लिया ?"

तीनों बच्चे विस्मय से मेरी ओर आँखें फाड़े देख रहे थे। आँगन में छोटा चिल्ला-चिल्ला कर रो रहा था। उसका रोना सुनकर उसके बाप खेत से लौट आये और उन्होंने मुझे क्रोध में पुकारा।

"बच्चे को क्यों नहीं देखती ? क्या बहरी हो गयी है; रो-रोकर मर जायेगा।"

"मर जाय तो अच्छा।"–मैं चिल्ला उठी, 'एक तो खाने वाला कम होगा।"

"क्या हो गया तुझे"–ये बोले, "क्या कह रही है तू, होश में है ?" इन्होंने बच्चे को गोद में उठा लिया और पुचकारने लगे। फिर उसे इरा की गोद में दे दिया।

"हाय राम, मैं मर जाऊँगी।" मैंने चिल्लाकर कहा,——"मैं लुट गयी। मेरे बच्चों ने ही मेरा चावल चुरा लिया। चावल के बिना क्या होगा, हाय, मेरा चावल।"

"तू इन्हें चोरी लगा रही है !"

मैनें इनकी तरफ देखा, यह डर गये और बोले——"चावल मैंने लिया।"

"तुमने, मेरे अपने आदमी ने।"

"हाँ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चुप रह गयी। क्या बोलती। दिमाग फटा जा रहा था। मैं इनकी तरफ देख रही थी। इनके गाल थिरकने लगे और आँसू आ गये।

"चावल मैंने नहीं खाया"––इनका बहुत धीमा स्वर सुनाई दिया। आँसू निगल कर ये बोले, "क्या करता; देना पड़ा, क्या करता। सोचा था, तू नहीं जान पायेगी।"

मैं इनके पास जा बैठी। कुछ नहीं पूछा। क्या पूछती, किसको दिया। चावल तो चला ही गया था। पर ये बोल पड़े—

"कुन्ती ले गयी। तेरी कसम है, क्या करता, मैं तुझसे क्या कहता. . .।

वे बोल नहीं पाये।

"छिनाल जादू जानती है।" मेरे मुंह से निकला।

"जादू नहीं, क्या कहूं तुझसे"—ये गहरी साँस लेकर बोले "उसके लड़के मुझसे ही हैं। आकर तुझसे कह देती तो क्या करता। तू मुझे क्या कहती।"

कानों को विश्वास नहीं हुआ और फिर मानना ही पड़ा तो ग्लानि से हृदय फट गया। इतने वर्षों बाद आँखें खुलीं। काली कहती थी—"छिनाल में जाने क्या आग भरी है, मर्दों को मोम कर लेती है" मेरा अपना आदमी भी इससे नहीं बचा। एक नहीं, दो-दो लड़के मेरे आदमी से हो गये। तो जाने कितनी बार ये उसके यहाँ गये होंगे। उसका नामर्द आदमी बोल भी नहीं पाया। मैं भी अनजान बनी कुछ न कर पायी।

"बहुत बरस की बात है"—ये लजाते हुए बोले," मेरी उमर कम थी और वह बड़ी चलती औरत है। पहले-पहल, तब तो तुमसे ब्याह नहीं हुआ था।"

"रूप आँखों पर छा जाता है तो कुछ सूझता नहीं"—कुछ ठहरकर वे फिर बोले।

बहुत देर मैं चुप बैठी रही। और फिर कहा—"जाने दो पुरानी बातों को। मैं खूब जानती हूँ, वह तो छिनाल है ही।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे दिल से बोझ उतर गया। मैंने सब कह डाला कि मुझे भी कैसे बदनामी का डर दिखा कर मुझसे चावल ठग ले गयी। सब कह डाला तो मन निर्विकार और शान्त हो गया। स्नेह के विश्वास और मधुरता का फिर भरोसा हो गया। कुन्ती का भय जाता रहा।

चावल से तो हाथ धोया, परन्तु भय से भी छुटकारा मिल गया। कोई भी भय नहीं रहा, चावल चोरी हो जाने का भी नहीं। अब एक दाना भी तो शेष नहीं था।

जो कुछ मिल जाता खा लेते, नये फूटते कोमल पत्ते, नये फूटते अंकुर, कहीं सड़ी-गली सकरकंदी धरती से निकल आती, कभी खाते-पीते लोगों की फेंकी हुई जूठन उठा लेती। कभी नदी किनारे कोई मेढक-केकड़ा मिल जाता। लड़के तड़के ही बाहर निकल जाते। नदी किनारे बाँसों के नये फूटे कोपल मिल जाते। ईख के सूखे खेतों में से किसी गन्ने की जड़ मिल जाती। कभी कस्बे की गलियों या नालियों में कुछ पड़ा मिल जाता। सभी किसान कुछ पा जाने की खोज-बीन में रहते। कभी किसी झाड़ी के नये फूटे कल्लों के लिए या गली में पड़ी जूठन के लिए दो आदमियों में झगड़ा हो जाता, सिर फूट जाते और वैर हो जाता। सब लोग एक दूसरे के शत्रु हो गये।

घास खा लेने से आँतों में बड़ा कष्ट हो जाता, परन्तु भूख के बावलेपन और अपने दुर्भाग्य के प्रति क्रोध और खीझ में घास भी खा जाते। भूख का विचित्र अनुभव और सदा भूखे बने रहने से सोते जागते और स्वप्न में भी भूखे रहने से पेट में आँतें ऐंठ-ऐंठ कर चिल्लाती रहतीं। जान पड़ता, आँतें शरीर के मांस को नोंच-नोंच कर खाये जा रही हैं। उस पीड़ा से क्षण भर छुटकारा पाने के लिए आदमी कुछ भी निगल जाता। फिर भूख की पीड़ा स्वभाव बन जाती है। आदमी इस पीड़ा की उपेक्षा करना चाहता है, परन्तु कर नहीं पाता। कुछ निगल जाने की छटपटाहट बनी रहती। फिर खाने की इच्छा भी भूलने लगती। पीड़ा की अनु-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूति भी धुंधली हो जाती, परन्तु जान पड़ता है कि शरीर अभी गिर पड़ेगा। हाथ-पाँव हिलाये नहीं हिलते। जल दिखाई देने पर घूँट भरे बिना नहीं रह सकते और घूंट भर लेने पर उसे पेट में रखे रहना असह्य हो जाता।

"अब क्या है, फसल तैयार हुई जाती है" ये धीमे से कहते। मैं सिर हिला कर हामी भर लेती। यह भुला देना चाहती कि इतने बीच के दिनों में प्राण कैसे बच पावेंगे और समर्थन करती—"हाँ, अब फसल पकने में देर थोड़े ही है।"

यह सब मैंने भी सहा-झेला है, परन्तु अपने शरीर में आ गये परिवर्तन की ओर ध्यान नहीं गया। दूसरों के शरीर में देखती थी कि उनके शरीर में माँस नहीं रहा और त्वचा खाली होकर लटक आयी है। घुटने और कोहनियों पर गाँठें सी बन गयी हैं, टाँगें और बाहें खाल से मढ़ी हड्डियाँ भर रह गयी हैं। आँखें कपाल में गहरी धंस गयी हैं। जवानों के शरीर सूख गये हैं और बूढ़ों के केवल पंजर-मात्र रह गये हैं।

हमारे छुटके की अवस्था सबसे बुरी थी। पैदा भी कुछ कमजोर ही हुआ था। सदा ही बीमार रहता। बार-बार माँड माँगता, मिलती नहीं तो रोता रहता। फिर माँड भी न माँगता और रोता ही रहता। नींद में भी उसका शरीर ऐंठता रहता और वह सिसकियाँ लेता रहता। दूसरे लोग भी न सो पाते। इरा उसे पुचकार-दुलार कर किसी तरह संभाले रहती। जो कुछ पा जाती, बच्चे को ही खिला देती। पर ऐसी चीज बच्चा क्या खा पाता। हताश होकर इरा अपना दूध उसके मुंह में डाल देती। बच्चा सूखे स्तन को ही चूसता रहता और रो न पाता।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[१५]

एक दिन राजा सुबह ही बाहर गया था और दिन भर न लौटा। संध्या समय दो आदमी उसे उठाये हुए लाये। एक उसका सिर और दूसरा उसके पाँव कंधे पर रखे था। उसके मुंह से ताजा खून बह रहा था। उसके सिर पर लगे ताजे घाव के रक्त से सिर के बाल चिपक गये थे। राजा का शरीर आँगन में लिटा दिया गया। लोग सिर झुकाये पाँव के पास बैठे कुछ कहते रहे और फिर उठकर चले गये। आँखों को विश्वास नहीं हो रहा था। मेरे लड़के का निष्प्राण शरीर सामने पड़ा हुआ था। मैं कुछ समझ नहीं पा रही थी। निःशक्त और अनुभूतिशून्य हो गये शरीर और मस्तिष्क में पीड़ा की चीरती हुई टीस उठ जाती। लोग कह रहे थे कि कुछ रुपये का झगड़ा था। रुपये से मेरे लड़के का क्या संबंध था। उसके पास तो एक पैसा भी नहीं था। लोग कह रहे थे कि लड़का बहुत कमजोर और दुबला था, जरा सी चोट से गिर पड़ा। यह तो मैं भी जानती थी कि लड़का भूख से सूख गया था, परन्तु किसी ने इसे मारा क्यों। लोग बहुत कुछ कह रहे थे, पर मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उनकी बात का शब्द तो कानों में पड़ रहा था, परन्तु बात समझ में नहीं आ रही थी। इरा उसके पास बैठकर सिर हिला-हिला कर क्षीण स्वर में रोने लगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"तू क्यों रो रही है"—मैंने लड़की से कहा, "यों ही तुझमें जान नहीं है, रोयेगी तो मर जायेगी।"

इरा ने विस्मय से मेरी ओर देखा, इधर उधर देखा और फिर अपने भाई की तरफ देखा। स्वयं मेरी आँखें छलक आयीं। मस्तिष्क से मूढ़ता का बादल छटने लगा। मन में इच्छा हुई कि मस्तिष्क की यह जड़ता ही बनी रहे, यह दुःख मैं अनुभव न कर सकूँ। परन्तु बादल कहीं रोकने से टिक सकता है।

मेरे बेटे, तुझे इसीलिए पैदा किया था कि तेरी मिट्टी को अपने सामने ऐसे पड़ा हुआ देखूँ! तेरा फटा हुआ स्वर और निर्जीव अंग देखूँ! अपने इस सूखे कंकाल शरीर को छोड़कर तू कहाँ चला गया! तेरे इस शरीर का मैं क्या करूँ!

लड़के की आँखों की ज्योति चली गयी थी, परन्तु वे अब भी खुली हुई थीं। ख्याल आया, आँखें बंद होनी चाहिए, और मैंने उन्हें मूँद दिया। उसका खुले मुंह का जबड़ा नीचे लटक रहा था, मैंने मुंह बन्द कर धज्जी से बाँध दिया। ध्यान आया कि उसे नहला देना चाहिए तो उसे नहला दिया। उसके मुख पर रक्त लगा रह गया था। इरा ने आकर मुंह साफ कर दिया। लड़का अब भी सामने पड़ा था, परन्तु उससे हमारा कोई मोह न रहा। इस शरीर पर चोट लगने का दुःख था, परन्तु उस शरीर के लिए कोई दुःख नहीं था। लड़का उस शरीर को छोड़ गया था। मेरा बेटा मर गया था।

लड़के के बाप ने अर्थी बाँधी और लड़के का शरीर उठाकर अर्थी पर रख दिया। यह कस्बे की ओर चले गये। दूसरे दिन सुबह-सुबह जनाजे का ढोल बजने लगा। पड़ोस और बिरादरी के लोग इकट्ठा हो गये। सबसे पहले बुढ़िया दादी लाठी टेकती हुई हाँफती-हाँफती आयी। दिरगिन आया और कन्हाई अपनी घर वाली के साथ आया। यह लोग थोड़े से फूल ले आये थे। काली ने मलमल का एक कपड़ा अर्थी पर कफन के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिए डाल दिया। आकर सब लोग चुपचाप बैठते गये। सूर्योदय हो जाने पर पुरुषों ने अर्थी उठाई और श्मशान की ओर चल दिये। स्त्रियों की अर्थी के साथ जाने की रीति नहीं। हम लोग दूर से आती ढोल की आवाज की ओर कान लगाये सुनते रहे। ढोल की आवाज हवा के सहारे कभी धीमी आती कभी जोर से। ढोल की आवाज भी बन्द हो गयी।

लड़के का शरीर भी समाप्त हो गया। भस्म में मिले हड्डियों के कुछ अंशमात्र रह गये। यह एक मनुष्य का अंश था।

राजा की मृत्यु के तीन दिन बाद टेनेरी से दो आदमी हमारे यहाँ आये। एक आदमी दोहरे शरीर का खूब लम्बा चौड़ा था, बड़ी-बड़ी मूछें थीं और दूसरा दुबला पतला और छोटे कद का। मोटे आदमी ने ही बात की। दूसरा आदमी उसके पीछे खड़ा उसकी बात का समर्थन कर रहा था। "चौकीदार लोग पहरे पर थे," मोटे आदमी ने कहा—"हमारे माल की रखवाली करना चौकीदार का काम है। समझती ?"

"हाँ हुजूर।"

"तुम्हारे लड़के को किसी ने मारा नहीं"—वही आदमी बोला, "इसे भागने से रोका। रोकना तो जरूरी था, समझती हो।"

"लड़के ने तो कुछ नहीं किया ?"

"किया कैसे नहीं ? तुम्हारा लड़का तो हाते में गया। हाते में इसका क्या काम था ? चौकीदार ने उसे पकड़ा। वह एक खाल चुराकर भाग रहा था।

"झूठ है साहब"—मैंने विरोध किया, "लड़का खाल का क्या करता ?

मोटे आदमी ने कुछ सोचकर उत्तर दिया—"खाल को बेच देता, किसी को भी बेच सकता था। हमारे यहाँ से बहुत सी चोरी हुई हैं।"

"हमारा लड़का चोर नहीं था" मैं बोली, "हम लोग गरीब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आदमी हैं, हमने क्या चोरी की है। आप हमारे घर में देख लीजिए, आपका क्या माल है।"

"हम सिर्फ इस लड़के की बात नहीं कर रहे हैं"—मोटे आदमी ने तर्क किया, "सब जानते हैं कि तुम्हारे लड़कों ने कारखाने में बहुत फसाद किया। अब और कोई दंगा-फसाद नहीं होना चाहिए, समझती हो! तुम्हारा लड़का चोरी करता पकड़ा गया; हो सकता है, उसने पहली बार ऐसा किया हो, उससे गलती हो गयी, लेकिन पकड़ा तो गया। वह चोरी में पकड़ा गया, इसीलिए सब कुछ हुआ। उसे भागना नहीं चाहिए था। अपराध लड़के का था। इसमें हर्जाना नहीं मिल सकता।"

"हर्जाना ?"—मैं बोली—"हमने हर्जाना कब माँगा है? सरकार हम कुछ नहीं समझतीं।

उस आदमी ने परेशानी से कहा—"कोई तुम्हें सिखा-पढ़ा दे और तुम बाद में हर्जाना माँगने लगो, इसलिए तुम्हें समझा दिया।"

—हर्जाना, आदमी की जान का क्या हर्जाना, मैं सोचने लगी! बात समझ में नहीं आयी कि इन लोगों का क्या मतलब था। परन्तु दुबला-पतला आदमी बोला :—

—"उसे किसी ने बहुत मारा भी नहीं ; जानती हो, भाग रहा था तो एक लाठी उसके सिर में धीमे से लग गयी, उसी से गिर पड़ा। लड़के में जान ही नहीं थी या कमजोर रहा होगा।"

"कमजोर तो था ही"—मैंनें स्वीकार किया, "कड़ी मेहनत करता था, खाने को कुछ था नहीं।"

"सच कहती हो तुम, तुम्हारे लिए तो बहुत गम की बात है"——दुबले आदमी ने झिझकते हुए कहा।

"गम की तो बात ही है, हमारा मतलब है····"। वह मोटे आदमी की ओर देखकर चुप हो गया।

"देखो बात यह है —मोटा आदमी फिर पाँव धरती पर पटक कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बोला, "हमारे आदमियों का कोई कसूर नहीं है, हमारी कोई जिम्मेदारी नहीं है। खैर, जैसे यह साहब कहते हैं, गम की बात तो है। जो होना था हो गया....। तुम्हारा भी क्या नुकसान है....एक आदमी खाने वाला कम हो गया....।"

दुबले आदमी ने घबराकर अपने साथी की ओर देखा कि वह क्या कह रहा है। उसके ओंठ भी हिलने को हुए, परन्तु डर के मारे वह कुछ नहीं कह सका। उसकी घबराहट देख, मोटा आदमी चुप हो गया और फिर कुछ सोच कर मेरी ओर देखकर बोला :—

"हम तुमको दुखी नहीं करना चाहते। बात कड़वी है, मगर ठीक तो है ही।"

मैंने सिर झुका कर हामी भर ली। कुछ कहन-सुनने से बनता ही क्या था। उन लोगों का और हमारा अंतर बहुत बड़ा था। कुछ कहने-सुनने से भी एक दूसरे को समझ नहीं सकते थे।

तुम समझ गयीं न ?"—मोटा आदमी फिर बोला, "इसमें हम लोगों की कोई जिम्मेदारी नहीं है।"

"ठीक है सरकार"—मुझे कहना पड़ा।

"तो फैसला हो गया, सब झगड़ा तै हो गया"—मोटे आदमी ने खीसें निकाल कर अपने साथी को सम्बोधन किया—

"हम तो पहले ही जानते थे कि इसमें झगड़े की कोई बात ही नहीं है। तुम व्यर्थ में डर रहे थे। हम तो जानते थे कि भले लोग हैं।"

दुबले आदमी ने गर्दन झुका ली, मानों मुझसे आँखें चुरा रहा हो, परन्तु जाते-जाते उसने एक बार मेरी ओर देख लिया। उसकी आँखों में लज्जा और दुःख भरा हुआ था।

"जाने दो हुजूर"—मैं धीरे से बोली, "यह सब तो होता ही है।" उसने घूम कर फिर मेरी ओर देखा और बहुत धीमे स्वर में बोला—

"—बहुत अफसोस है मुझे! भगवान् भला करें।"

वह लज्जा से अपराधी की भांति सिर झुकाये चला गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[१६]

"फसल कटाई का समय आ रहा है" मैंने कहा—"फसल गोहनी होगी, पछोरनी होगी यह सब कैसे बन पड़ेगा ?"

"जब समय आयेगा" इरा के बाप की आँखों में आशा चमक उठी, "सब बन पड़ेगा, सब हो जायेगा। तुम डरो नहीं।"

मैंने इनके शरीर की ओर देखा, बाहें और जाँघें सूखी टहनियों जैसी हो रही थीं। फसल का काम कम नहीं होता। पानी भरे खेतों में से एक-एक पेड़ करके फसल बटोरना, फसल कूट कर धान बटोरना और फिर धान कूट कर चावल निकालना। अशक्त शरीर से यह काम कैसे हो सकता है।

इरा का बाप धैर्य से बोला—"देख ले न तू, फसल सामने होगी तो शरीर में अपने आप सामर्थ्य आ जायेगी। फसल में दाना पड़ता देखकर किसान के शरीर में खून भर जाता है।"

सचमुच फसल पकती देखकर हमारे हृदयों में साहस भरने लगा। हमारी आँखें फसल की ओर ऐसे लगी रहतीं जैसे कुत्ता दूसरे कुत्तों से सतर्क होकर किसी हड्डी की ओर देखता है कि कोई छीन न ले जाय, या जैसे मा स्नेह और गर्व से अपनी संतान की ओर देखती है और आशंका का भाव भी मन में बना ही रहता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इरा धीमे-धीमे कदम रखती हमारे पास आकर खड़ी हो गयी और बोली, "भीतर छप्पर में तो बहुत गरम है, बैठा नहीं जाता।"

इरा ने बैठने से पहले धान की एक बाल तोड़ ली। बाल को हथेली पर मसल कर हरे-हरे दाने को उंगली से छूकर बोली—

—"कब तक पक जायेगी

इरा भी जानती थी कि अभी पक जाने में देर थी। उन्हीं खेतों में वह जनमी थी। उसकी आँखों के सामने कितनी ही फसलें पक चुकी थीं।

"डेढ़ पाख अभी और है" उसके पिता ने उत्तर दिया। कुछ कम समय बताने से संतोष ही होता, पर इन्होंने ठीक-ठीक ही बताया।"

"डेढ़ पाख कौन बहुत होता है"—मैंने इरा का साहस बढ़ाने के लिए कहा, "और भगवान् चाहेंगे तो और जल्दी हो जाएगी।

यही हम सब लोग भगवान् से माँगते रहते थे कि फसल जल्दी हो जाय। इरा की आँखें भीग गयीं, उसके बाप का मुख गंभीर हो गया। सिलवा ने ओंठ दाँत से खोंट लिये। एक ही बात सबके मन को व्याकुल कर रही थी कि फसल पकने तक छुटका किसी तरह बच जाय। दूसरे सब तो किसी न किसी तरह समय काट ही लेंगे, पर बच्चे में इतनी शक्ति नहीं थी। उसका कोमल शरीर बहुत ही गिर गया था। अलाय-बलाय खाने से या भूख में शरीर को खुजलाते रहने से उसका शरीर फोड़ों से भर गया था। कई बार वह घंटों रोता रहता, कभी मूर्छा से चुप हो जाता। मेरा हृदय दहल उठता। मैं जाकर उसका शरीर छू कर देखती, वह फिर जाग उठता और उसकी पीड़ा फिर शुरू हो जाती।

दो-तीन दिन पश्चात् छुटके में परिवर्तन दिखाई दिया। उसकी आँखों का धुंधलापन कुछ कम हो गया। अब वह उतना रो भी नहीं रहा था, कुछ चेतन सा जान पड़ा। जैसे शरीर में फैली जीवन की बची-खुची शक्ति सिमट कर एक बार चमकने लगी हो। जैसे तेल समाप्त हो जाने से, बुझने से पहले दीपक की लौ एक बार तेज हो जाती है। अगले दिन और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रात भी लड़के की हालत अच्छी ही दिखायी दी। उसे नींद भी अच्छी आयी, ऐसी नींद महीनों से नहीं आयी थी। मैं उसके नींद में शांत मुख की ओर ताकती रही। मन ही मन भगवान् को धन्यवाद दे रही थी कि उन्होंने निस्सहाय बच्चे की मूक प्रार्थना पर भी कान दिया। हम अनाथों का और क्या सहारा था। इरा दबे पाँव आकर मेरे समीप खड़ी हो गयी। उसने मेरी ओर देखा और फिर छुटके की ओर देख कर उसके ओठों में मुस्कराहट आ गयी। "अब तो अच्छा है"—मेरे ओठों से निकला। "इरा को यह बताने की आवश्यकता ही क्या थी? उससे अधिक छुटके की अवस्था कौन जानता था।

सान्त्वना पाकर उस रात मुझे नींद आ गयी। सुबह उठी, तब भी मन में आशा थी, कि छुटका अब चंगा हो जायेगा। फसल आ ही रही है, दुःख के दिन समाप्त हो जायेंगे। भले बुरे दिन आते ही हैं। सुख बीतता जान नहीं पड़ता, परन्तु दुख बिताना दूभर जान पड़ता है। पर बीत तो दुःख भी जाता है। अब तो कुछ ही दिन की बात थी।

पौ फटने में अभी देर थी। मैं इन्हीं कल्पनाओं में ऊँघ रही थी। कदमों की आहट जान पड़ी, मानो कोई घर में घुसा आ रहा था, चोरी करने के लिए। जो कुछ शेष था वह भी चुरा ले जाने के लिए। मेरी आँखों के सामने कुन्ती का चेहरा आ गया, दुष्टा अब भी चोरी करने चली आ रही है।

कदमों की आहट और समीप आ गयी। कोहनी के सहारे मैंने उठकर देखा, चोर आँगन में आ गया था। मैं उसकी ओर झपटकर दौड़ी। दोनों हाथों से गर्दन दबोचकर उसे गिरा दिया। मैं क्रोध में चिल्ला रही थी और मेरे नीचे दबी हुई स्त्री भी। मेरा रोयाँ-रोयाँ क्रोध से जल रहा था। मैं अपनी और उसकी चीखों में कोई भेद न कर सकती थी।

दबे हुए गले से क्षीण-सी चीत्कार कानों में समझ पड़ी—अम्मा-अम्मा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे कन्धों को पकड़ कर किसी ने दोनों हाथ पीछे की ओर खींच लिये।

कानों ने फिर सुना—"चुड़ैल, पागल हो गयी है! तेरा सत्यानाश हो।" यह आवाज इरा के बाप की थी।

देखा, यह लड़की पर झुके हुए उसे सँभाल रहे थे। इनके शरीर पर कोई कपड़ा नहीं था। वे चीत्कार सुनकर हड़बड़ाहट में सोते से ऐसे ही चले आये थे। मेरी ओर क्रोध में देखकर उन्होंने फिर फटकारा:—"क्या हो गया तुझे चुड़ैल? अपने हाथों लड़की को मार डाला जालिम!"

सिलवा भीतर से घबराया हुआ आया। बाप और बेटे ने इरा को उठा लिया और भीतर ले गये। मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। इरा कहाँ से आ गयी। मैंने तो चोरी करने आयी हुई कुन्ती को पकड़ा था। मैं लड़की के पास जा बैठी। उसका चेहरा सूझ कर लाल-नीला पड़ गया था। निचला ओंठ दाँत तले आ गया था। उससे खून बह रहा था। मेरी आँखें मुंद गयीं और आँखों के सामने आग के गोले से घूमने लगे। यह गोले पीछे हटते अंधकार में लीन हो जाते। मैंने अपना सिर झटक कर आँखें खोलीं और इनके पास लड़की को सँभालने के लिए जा बैठी। ये कपड़ा भिगोकर उसके मुँह से खून पोंछ रहे थे। इरा की धोती खून से भर गयी थी।

"लाओ मुझे दो, मैं पोंछूँ"—मैंने धीरे से कहा।

"परे हट"—इन्होंने मुझे धकेल दिया, "बहुत कर दिया तूने, तेरा दिमाग ठीक नहीं है।"

"मैंने तो समझा था कुन्ती है"—मैंने फुस-फुसा कर कहा।

इन्होंने हट कर मुझे जगह दे दी; परन्तु मेरा भरोसा न कर समीप बैठे मेरी ओर देखते रहे।

इरा के बाँये गाल पर लम्बा घाव हो गया था। दायीं कलाई से भी खून बह रहा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"यह कैसे कट गया"--मैं विस्मित थी, "मैंने तो नहीं काटा।"

"चूड़ी से कट गया।"

"चूड़ी ! चूड़ी कहाँ से आयी। घर में तो धेला भी नहीं था"--मैं विस्मय से इनकी ओर देखती रह गयी।

"देखती नहीं यह चूड़ी के टुकड़े"–इरा के बाप ने मुझे दिखाया।

चूड़ी टूट कर इरा के शरीर में गड़ गयी थी। महीन-महीन काँच अब भी उसके घावों में दिखाई दे रहे थे। मैं कपड़ा भिगोकर साफ करने लगी। दो बड़े घावों पर कपड़ा फाड़ कर बाँध दिया। दूसरे घावों के लिए कपड़ा था नहीं। उसकी खून और धूल से सनी धोती मैंने उतार ली। धोती को धोने के लिए नाले पर ले गयी। पानी में भिगोने से पहले धोती को झाड़ा कि धूल और काँच के टुकड़े गिर जाय। धोती की सिल-वट में फंसी हुई एक छोटी सी चमकती चीज उछलकर पानी में गिर गयी। पानी गंदा था। हाथ-पाँव से टटोल कर ढूँढ़ने का यत्न किया, पर मिली नहीं; परन्तु गिरते समय तो मैंनें देख ही लिया था—एक रुपया था।

मैंने लगे खून के दाग मलमल कर धोये। पूरी धोती को धोकर सूखने के लिए घास पर फैला दिया। धोती सूख गयी तो उसे लेकर घर लौटी, दोपहर हो चुकी थी। लौटकर घर को झाड़ा-बुहारा, चूड़ियों के टूटे हुए टुकड़े बटोरे और धरती पर से खून के दाग पोंछ दिये। कुछ करने को नहीं था, मैं लड़की के पास बैठ गयी। मस्तिष्क शाँत हुआ तो ख्याल आने लगा लड़की रुपया लाई कहाँ से? रुपया इसे किसने दिया?....चुरा लाई तो कहाँ से? छिपाये हुए क्यों थी? चूड़ियाँ पहने यह रात में कहाँ से आ रही थी? चूड़ियाँ कहाँ से लाई? कोई उत्तर नहीं था; परन्तु मैं लड़की को चुपचाप सो लेने के लिए मौन बैठी रही।

कोठरी के दूसरे कोने में लेटा हुआ छुटका रोने लगा। उसका रोना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुनकर इरा की आँख खुल गयी और उसने सिर उठाकर उसकी ओर देखा ।

"चुपके से लेटी रह, घाव में खून आ जायेगा।"

इरा मेरी ओर देखकर चुप रह गयी। उसके ओंठों से धीमा स्वर सुनाई दिया :—

"भूखा है, इसे कुछ खिला दो। मेरी साड़ी में एक रुपया है।"

समझ में आ गया कि छुटका क्यों सँभल कर पनपने लगा था। यह मेरी भगवान् से की गई प्रार्थनाओं का परिणाम नहीं था ।

यह भी समीप बैठे थे। कुछ बोलने के लिए इन्होंने मुंह खोला। मैंने इनकी बाँह पकड़ कर चुप करा दिया। इरा कोहनी पर टेक देकर उठने को हुई, मैं उसकी ओर बढ़ गयी और कहा—"हिल मत, मैं लड़के को सँभाल लूंगी।"

मैंने लड़के को गोद में उठा लिया और कोठरी के बाहर ले गयी। उसे पुचकार कर चुप कराने का यत्न किया। व्यर्थ था। इरा उसे खिला-पिला कर संतुष्ट करती थी। वह तो खाने के लिए माँग रहा था। मैं लड़के को लिये दूर चली गयी कि उसकी रुलाई से लड़की परेशान न हो। लड़का रोते-रोते थक गया तो सिसकियाँ लेने लगा और चुप हो गया।

इरा के घाव अभी पूरे भर नहीं पाये थे। उसे बाहर जाते देखा तो मैं बोली :—

"कहाँ जा रही है ? लेटी रह, अभी तो घाव हरे हैं।"

"कैसे लेटी रहूँ"—विद्रूप के स्वर में लड़की बोली, "कैसे लेटी रहूँ, लड़का भूखा है।"

"कहाँ जा रही है तू"—मैंने पूछा, "कुछ बता तो सही।"

"यह मत पूछो"—लड़की बोली, "यह जानकर क्या करोगी ?"

इरा सिर में कंघी करने लगी। बाल खुल कर कमर तक फैल गये। पहले उसने दाहिने हाथ की तरफ कंघी की, फिर दूसरी ओर। बाल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चमक आये तो उसने जतन से चोटी बाँधी। ब्याह के बाद इतने जतन से बाल बाँधते उसे कभी नहीं देखा था।

मैंने कल्पना में देखा, संध्या के झुटपुटे अंधेरे में इरा घर से निकली। अपनी साड़ी वह अंगों पर कस कर लपेटे थी। टेनेरी की बगल से होकर जो पगडंडी जाती है, उसी पर वह कस्बे की ओर चली। टेनेरी के पास चौड़ी सड़क आ जाती है। वहाँ पान-बीड़ी और ताड़ी की दूकानें हैं। संध्या समय आवारा लोगों की अच्छी खासी भीड़ रहती है। लोग बीड़ी का धुआँ उड़ाते और ताड़ी के झाग भरे कुल्हड़ हाथ में लिये घूमते रहते हैं। सड़क कुल्हड़ के टुकड़ों, मिठाई खाकर फेंके हुए जूठे पत्तों और पान की लाल पीक से भरी रहती। इरा सड़क पर पड़ी गन्दगी से बचती अपने छरहरे शरीर से मटकती दुकानों के बीच से चली जा रही थी। लोग मुस्कराकर उसकी ओर आँखों से इशारे कर रहे थे। कोई मुख से सीटी बजा कर उसे संकेत कर रहा था और कोई स्पष्ट परिहास में उसे पुकार रहा था। इरा कटाक्ष से उनको ओर देख लेती। उत्तर में उसके ओठों पर हल्की सो मुस्कान आ जाती। बाजार में दूसरी गली के सिरे पर पहुँचने पर वह घूम कर पीछे देख लेती और फिर आगे बढ़ जाती।

"बता तो"—मैंने अनुरोध किया, "मालूम तो हो, नहीं तो जाने क्या-क्या सोचतो रहूँगो।"

इरा ने आँख के कोने से मेरी ओर देखा और धीमे से बोलो :—

"उतना तुम सोच ही नहीं पाओगो।"

"तू मुझे क्या समझती है"—मैं खिन्नता से बोली, "और मैं ही तुझे क्या जानतो हूँ।'

"अम्मा सुन कर बुरा ही लगेगा"—इरा ने उत्तर दिया, "सच बुरा लगता है।"

मैं हथेली पर कनपटी रख सोचने लगी, याद आया :—राजा को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मृत्यु के बाद टेनेरी से जो आदमी आया था, वह भी कुछ ऐसी ही बात कह रहा था—सच कड़ुआ लगता है।

संध्या समय इरा घर से जा रही थी तो उसका बाप आ गया। ये खेत में मेड़ें बाँध कर ओर सिंचाई की नाली साफ करके लौटे थे। कीचड़ से भरा काँटा इनके कन्धे पर था। काँटे की टेंक धरती पर दे ये खड़े हो गये और इरा की ओर देखने लगे।

"इस समय कहाँ जाती है तू ?"—बाप ने पूछा।

"क्या करोगे पूछ कर ?"

"मैं पूँछ रहा हूँ, बोल।"

"कुछ नहीं है बताने को।"

इरा के बाप को त्योरियाँ चढ़ गयीं। लड़की बाप के सामने कभी ऐसे नहीं बोली थी। मैंने उसकी ओर देखा; लगा, लड़की रात भर में जैसे बदल गयी हो। इरा स्वभाव से सौम्य और बड़ी लजीली थी, कभी सामने बोली नहीं थी, परन्तु उसका वह भोलापन और लाज जाने कहाँ उड़ गयी थी। देख कर विश्वास नहीं हो रहा था।

क्रोध में इरा के बाप के ओंठ फड़फड़ा रहे थे। बड़ी कठिनता से बोले—"यही नहीं होगा, रात में बाहर नहीं जाने दूँगा......।"

"जाऊँगी, रोज जाऊँगी। क्या भूखी मर जाऊँ ?"

"चुड़ैल, तू वेश्या बन गयी"—बाप चिल्ला उठा।

बाप की कनपटियों पर नसें फूल आयीं, वह क्रोध में हाँफ उठा। इरा अपने आँचल का कोना पकड़े निधड़क सामने खड़ी थी, न डर, न हया। मुझसे देखा न गया, मेरी आँखें मुंद गयीं।

"ऐसे कहने से क्या होता है"—इरा बोली "यही रह गया है कहने को, गाली क्यों देते हो.....।"

"गाली देता हूँ"—बाप चिल्ला उठा और उसने क्रोध में इरा के ऊपर थूक दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इरा चुप निश्चिल खड़ी रही। यह फिर चिल्ला उठे :—

"चुड़ैल, अब तुझे कोई देखने वाला नही है। कोई तेरे कटे हुए मुंह पर थूकेगा नहीं।"

"कटा है तो ठीक हो जायेगा"—इरा निर्भय हो बोली "आदमी को मेरे मुंह से क्या लेना है।"

मैं आँखें मूंदे थी, सुनाई दिया—"मैं जाऊँगी, मुझे जाने दो।" रोकने और छूट जाने की हाथापाई की आहट भी सुनाई दी। शायद बाप लड़की को रोकने का यत्न कर रहा था।

इरा चली गयी। उसे रोकने के सब यत्न किये, परन्तु रोक नहीं सके। लड़की बच्चा तो थी नहीं कि उसे मारपीट कर रोक लेते। जवान औरत थी और अपनी बात पर अड़ गयी थी। अब तक वह सदा कहना मानती थी, कभी सामने मुंह नहीं खोला था। हमें यही बात स्वाभाविक लगने लगी थी। वह बदली तो असह्य धक्का लगा, परन्तु उसे दबा कर तो रखा नहीं जा सकता था। वह अब अपने मन से आने-जाने लगी। उधर से आँखें बन्द किये रहने के सिवा और क्या चारा था।

इरा छोटे के लिए दूध-चावल बाजार से ले आती। बच्चा और कुछ पचा ही नहीं सकता था। इतने दिन तक घास-पात और जड़ें खाने के पश्चात् सामने आया भात ठुकराते न बनता था, परन्तु इस भात का मोल क्या था। बाप ने लड़की के लाये चावल का दाना भी नहीं छुआ। उसका शरीर खाली हड्डियों का पिंजरा भर रह गया था। उस अवस्था में भी वह काँपते हुए कदमों से कुछ खानेको ढूंढ़ने चल देते।

"जो होना था सो हो गया"—मैंने इन्हें समझाया, "तुम खा ही लोगे तो क्या होगा? तुम्हारा क्या दोष है? तुमसे जितना बन पड़ा उसे रोका।"

"नहीं, मैं छुऊँगा नहीं"—इरा के बाप ने मेरी ओर देख कर दृढ़ता से उत्तर दिया। उनके हृदय में कितना क्रोध था, अपनी संतान का पेट न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भर सकने के लिए कितनी लज्जा थी, क्या जानूं। इतना ही जानती हूँ कि वे ईमानदार थे और अपनी बात के पक्के।

इरा छुटके को फिर खिलाने लगी और उसका शरीर फिर पनपने लगा। हमें ऐसा ही जान पड़ा; क्योंकि लड़का अब उतना रोता नहीं था। परन्तु कुछ ही दिनों में मालूम हुआ कि उसका शरीर गिरता जा रहा था। चेहरा उसका सूख गया और आँखें बहुत बड़ी जान पड़ने लगीं। जान पड़ता था, उसके प्राण सारे शरीर से सिमट कर आँखों में ही केन्द्रित हो गये थे। वह कोठरी के कोने में शिथिल पड़ा रहता। हाथ-पाँव भी न हिला पाता। परन्तु उसकी आँखें हम लोगों का पीछा करती रहतीं। वह घायल पक्षी सा जान पड़ता था। ओंठ खोलने पर उसका शब्द भी कठिनाई से सुनाई पड़ता।

एक दिन उसकी धीमी सी पुकार सुनाई दी—

"अम्मा।"

"हाँ मेरे बेटे ?"

"कहाँ हो तुम....। कुछ दिखाई नहीं देता।"

"यहीं हूँ तेरे पास बेटा।"

छुटके ने अपना हाथ उठाने का यत्न किया। मैं उसके पास झुक आयी और उसे उठाकर गले से लगा लिया।

"सो जा मेरे बेटे। तुझे सब कुछ दिखाई देगा, तू जरूर चंगा हो जायेगा, सब कुछ देखेगा।"

बच्चा मेरी बात का विश्वास करके संतुष्ट हो गया। जाने उस छोटे से मस्तिष्क को कौन सा भय व्याकुल कर रहा था। नींद में उसके गले में पड़ी मेरी बाहें शिथिल हो गयीं। कुछ पल पश्चात् उसके मुख का शब्द सुन कर उसकी ओर मैंने देखा। वह एकटक एकटक इरा की ओर देख रहा था। मैंने झुक कर देखा, उसकी आँखों पर एक सफेद झिल्ली सी फैल गयी थी। मैंने बच्चे को गोद में उठा लिया। उसके अंग शिथिल हो गये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थे और शरीर इतना हल्का, मानो मुट्ठी पर सूखे पत्ते उठा लिये हों। मैंने उसे पुचकारा, परन्तु उसने कोई प्रतिक्रिया न की। उसका शरीर ठंडा जान पड़ा और अंग ऐंठने लगे। उसे धरती पर लिटा दिया और पलकें अपने हाथों से मूँद दीं। उसके चेहरे पर अब भी पीड़ा के चिन्ह थे, पर वह अब निश्चल था। उसका बाप भी पास आकर बैठ गया। उसकी रूखी आँखों में भी लाली आ गयी। चेहरा पथरा-सा गया। हमारी अंतिम संतान, जीवन के उल्लास के समय जिसका बीज बोया गया था, छिन गया। मैं रोती रही, परन्तु संतोष था कि उसकी पीड़ा का अंत हो गया। अधिक रो भी न सकी, रो लेने की शक्ति भी नहीं थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[१७]

छुटके की मृत्यु के पश्चात् हमारे दुःख के प्रति उपेक्षा दिखाने के लिए भरपूर पकी हुई फसल खेतों में लहराने लगी। यह वर्ष की दूसरी फसल थी। इन्हीं खेतों में पहली फसल काट चुके थे। विश्वास था कि दूसरी फसल कमजोर होगी, पर फसल खूब भर कर हुई। बालें खूब भारी थीं। हम लोग दिन भर गहवाई में लगे रहते। दिन ढले चावल लेकर छप्पर में लौटते। अगले तीन दिन खेतों का पानी बहाने और झाड़-झंखाड़ निकालने में लग गये। फिर तीन रात तक चावल को बीनते और पछोरते रहे। तब भी कुठार में धान का ढेर लगा था। उसे बाजार ले जाकर बेच डालने की प्रतीक्षा थी।

"मैं कहता था न"—इन्होंने कहा, "ताकत अपने आप आ जायेगी, नहीं तो इतना काम क्या हमारे सामर्थ्य का था।" उन्होंने मोतियों की तरह चमकते चावलों और धान की ढेरियों की ओर गर्व से देखा। हमारी आँखें चार हो गयीं। हमारे अस्थि-पंजर, घिनौने शरीर पर पसीने की धारें बह रही थीं। सिलवा और इरा को उनकी बात पर हँसी आ गयी और हम भी हँसने लगे। हम है चारों हँस-हँस के पागल हो गये और हाँफने लगे। हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गये। हमें स्वयं अपने विरूप शरीरों पर हँसी आ रही थी, मानो अपने अतीत पर हँस रहे थे, अपने बीते हुए दुःख पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हँस रहे थे। इरा के पिता सबसे अधिक प्रसन्न थे। वे मुट्ठी भर चावल हथेली पर रख उसे दूसरे हाथ से मसल चावलों की रगड़ को कानों से सुन रहे थे। वे अपने सौभाग्य का हाथों के स्पर्श और कानों में सुने शब्द से पूरा विश्वास कर लेना चाहते थे।

"अब लगान पूरा हो जायेगा"—ये बोले, "और घर में भी कमी नहीं रहेगी। खेतों में मछला भी हो जायेगा।"

"तरकारी भी बो लेंगे"—वे बोले "सेम और मिर्चा के बीज बाजार से ले आऊँगा। काशीफल की बेल जरूर लगायेंगे, सकरकन्दी भी। पहले तरकारी से मैंने कितना पैसा बनाया था।"

"और नहीं तो क्या"—ये बोले, "अब पैसा होगा तो सब हो जायेगा। भगवान् की दया है, उन्होंने दुःख दूर किया।"

"पहले धान तो बेचो"—मैंने उत्साह को सीमा में रखने के लिए कहा, "तब फिर और बात सोचना।"

उत्साह में बैठे न रह सके। हम लोग बोरियाँ निकाल लाये और चावल नापने का पीतल का बर्तन भी। चावल नाप-नाप कर दाम जोड़ने लगे।

बीज बोना शरीर की साधना है। खेतों में फूटे अंकुर मन को शांति देते हैं। परन्तु खलिहान में लगे फसल के ढेरों को देखने की अनुभूति निराली ही होती है। चावल के चमकते हुए ढेर और उनके स्पर्श से सफेद हो गये हाथ; चावलों को नपने में भर-भर कर गिनना, यह एक अकथ तृप्ति देता। किसान उदारता से नपने में चोटी उठा कर भरता। अपने अभाव को अकृपणता से मिटा देना चाहता। मन में यह भी भरोसा रहता है कि इतने श्रम से उपजाया अन्न इतना निर्मोही नहीं हो जायेगा कि धोखा देकर हिसाब से अधिक चला जाय। अपने आप ही फिसल कर घर में बना रहने के लिए गिर पड़ेगा। हम लोग बोरियाँ भर-भर कर कोठार में लगाते गये।

दूसरे दिन तड़के ही हम लोग पूजा के लिए कपूर, कुंकुम, धान और तेल लेकर देवी के चौरे पर गये। हमारे हृदय देवी की कृपा से द्रवित थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[१८]

मैं काशीफल और बैंगन डलिया में लेकर बाजार गयी। बैंगन खूब बड़े गोल और चिकने नवोढ़ा की भरी छातियों जैसे थे। कछियारी में खूब फल आया था। सेम, आलू, खरबूजे और मिर्चें भी खूब फले थे। फली हुई तरकारी को देखकर संतोष होता था। हाथ में पैसे आने पर उससे भी अधिक। अब मैं तरकारी बिसवास के हाथ नहीं बेचती। बहुत सी दूसरी दुकानें हो गयी थीं। वहाँ दाम अच्छे मिल जाते और बिसवास को कमोनी बातें भी न सुननी पड़तीं। बिसवास की उमर बढ़ने के साथ-साथ उसकी तोंद भी बढ़ती जाती थी, परन्तु उसकी बातें वैसी जली-कटी ही होती थीं। वही उसका सूदखोरी का काम चल रहा था। ऋण लेने के लिए विवश दुखियों का खून पी–पी कर उसकी थैलियां और पेट दोनों बढ़ते जा रहे थे।

एक दिन मैं उसकी दुकान के सामने से जा रही थी। उसने अपने दरवाजे से पुकारा—"अरी रुक्मिनी, सुना नहीं तूने तुझे बधाई दें।"

"काहे की बधाई?"

"कैनी डाक्टर आ गया, हमने देखा था।"

"मुझे क्या बधाई"—मैंने उत्तर दिया, "सभी को बधाई।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"तेरो तो खास बात है"—बिसवास ने मेरी ओर मुस्करा कर कहा।

"मुझे खास क्या"—मैं बोली, "बड़े भले डाक्टर हैं, सभी का भला करते हैं।"

"तेरे लिए तो खास बात है"—बिसवास बोला "लोग-बाग कहते हैं, तेरा खास ख्याल करते हैं।"

"करते ही हैं"– मैंने अपना क्रोध वश में करते हुए कहा, "हम लोगों का तो बहुत भला किया है उन्होंने।"

"तेरा तो बहुत ख्याल करता है न"—बिसवास ने अपने मोटे-मोटे ओंठ बिचका कर कहा, "कुन्ती ठीक कहती है न?"

"उस छिनाल का क्या है"—मैंने घृणा से उत्तर दिया, "भुगत रही है अपनी करनी।"

बिसवास ने और आगे बढ़कर कहा—"झूठ तो नहीं कहती न?"

"चुप रह सुअर! हरामी कहीं का"—मैंने गाली दे दी।

बिसवास को गाली सुनने की आदत थी। वह गाली सुनकर हँस दिया और बोला—बड़ा गुस्सा है री तेरा! फिर भी कभी तो रुपये-पैसे की जरूरत पड़ेगी!"

ऐसे निर्लज्ज कमीने पर क्या गुस्सा दिखाती। सोचा, कुन्ती जैसी छिनाल की बात की क्या परवाह करूँ। कस्बे से लौटते समय सोचा कि डाक्टर को देखती जाऊँ। यह भी ख्याल आया कि उधर क्यों जाऊँ, वे आप ही हम लोगों के यहाँ आयेंगे। फिर अपने मन की आशंका पर हँसी आयी कि इस उमर में भी मैं लोगों की बातों से डरती हूँ। मैं डाक्टर साहब के मकान की तरफ घूम गयी। उनके स्वागत के लिए एक माला गुलाब की और एक चमेली की ले ली और शुभ सगुन के लिए एक फल, नारंगी ले लिया।

डाक्टर साहब की कुटिया सूनी-सूनी और उजड़ी हुई सी दिखाई दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जगह-जगह से पलस्तर उखड़ कर गिर गया था। खिड़की के किवाड़ भी टूटे हुए थे। किवाड़ बन्द थे। मैंने किवाड़ खोलकर झांका। डाक्टर साहब भीतर के कमरे में खड़े थे। उन्होंने घूम कर देखा, माथे पर त्योरियाँ चढ़ गयीं। बोले :—

"यह किसने कहा हम आ गये ?"

मैं डाक्टर साहब का ढंग जानती थी। फिर भी सहम गयी, उत्तर दिया :—

"बिसवास ने अभी कहा तो मैं चली आयी।" वे चुप मेरी ओर देखते रहे। मालाएं मेरे हाथ में थीं। संकोच हो रहा था कि ये मालाएँ और नारंगी क्यों लायी। उन्हें पीठ पीछे छिपा लिया। डाक्टर साहब ने देख लिया था, पूछ बैठे :—

"क्या है, क्या छिपा रही हो ?"

"कुछ नहीं"—मैंने उत्तर दिया, "बाजार गयी थी, ऐसे ही ले लिया।"

"क्या माला है न।"

"हाँ, हुजूर"—संकोच से उत्तर दिया, "आपके लिए ले आयी हूँ। आपने कैसे जान लिया ?"

डाक्टर ने मुझे खिड़की के समीप बुलाकर उंगली से बाहर दिखाया। वहाँ मालाओं और फूलों का एक ढेर लगा था। बोले :—

"इतना भी नहीं जानता ? सभी लोग लिये चले आते हैं।"

"तो क्या हर्ज है, हुजूर"—मैंने साहस से उत्तर दिया।

साहब हँस पड़े। उनके चेहरे की रेखाएँ और माथे की त्योरियाँ मिट गयीं। जैसे चेहरे से बुढ़ापा पुँछ गया हो।

"हुजूर, बहुत दिन में लौटे"—मैंने कहा, "हम लोग आपको बहुत याद करते रहे।"

"क्यों ?"—डाक्टर ने पूछा, "क्या कोई परेशानी थी ?"

मैं कुछ बोल न सकी। साहब फिर गम्भीर हो गये। मानो कभी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हँसे ही नहीं थे। इतने बरस बाद उन्हें देख कर भी पहचान लेना संभव नहीं था।

"हुजूर, परेशानी तो रहती ही है"—मैं दुविधा से बोली, "परेशानियों का क्या है। आपका तो सभी तरह का सहारा है . . . ." बात अपनी कह नहीं पायी। डाक्टर साहब कठिनाई में रुपये-पैसे और अनाज से भी सहायता करते ही थे। परन्तु उनका सहारा उससे कहीं बड़ा था।

"हुजूर, आपके रहने से सब तरह का सहारा रहता है। आपके आशीर्वाद से सब दुःख दूर होता है"—मैं बहुत कुछ कह गयी। डाक्टर साहब खिड़की के बाहर आँखें लगाये दाँतों से नाखून खोंटते रहे और फिर मेरी ओर देख कर बोले—"परेशानी तो सबकी जिन्दगी में है, यहाँ फसल मारी गयी थी क्या? भूखों मरे होंगे?"

"हाँ हुजूर, बहुत बुरा समय था"—मैंने उत्तर दिया, "दो बेटे जाते रहे। राजा के चोट लग गयी थी और छोटा अकाल में जाता रहा . . ." मैं और न बोल सकी। इतने दिनों में बच्चों की स्मृति धीमी पड़ने लगी थी; परन्तु स्वयं ही उनकी बात करने से वेदना हृदय में बाण की तरह गड़ने लगी। मैंने आँचल आँखों पर रख लिया। साहब चुप खड़े रहे।

"साहब, बस और क्या बताऊँ"—मैंने कहा, "आपके यहाँ तो घरबार में सब कुशल-मंगल है?"

साहब ने मेरी ओर देख कर कड़े स्वर में पूछा—"तुम्हें हमारे घर-बार से क्या मतलब?"

"कुछ नहीं हुजूर, हम दुआ करते हैं।"

"दुआ करता है"—साहब चिढ़ कर बोले, "हमारी औरत घर छोड़ गयी है और लड़के हमको पहचानते नहीं।"

मैं सोचने लगी; कैसी औरत होगी, जो इतने बरस घर में रह कर अपने आदमी को छोड़ गयी और उसे भूल गयी। साहब बहुत-बहुत दिन घर में नहीं रहते थे, तब भी क्या। फिर यह भी ख्याल आया कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाने बेचारी इसी बात से दुखी होगी, जाने डाक्टर साहब का ही दोष हो।

"तुम्हारा ख्याल है कि इसमें हमारा दोष है"--साहब मुझे चुप सोचते देख कर बोले, "सच बोलो, हम तुम्हारा मतलब समझ गया।"

"हुजूर, औरत को आदमी तो चाहिए,"—मैं सहमते हुए बोली, "आदमी न होने से परेशानी तो होती ही है।"

"तुम्हारा मतलब है कि आदमी को कुछ काम नहीं करना चाहिए"--डाक्टर ने प्रश्न किया, "बस घर बैठा रहे!"

'हुजूर, आप जैसा आदमी कैसे बैठा रह सकता है।"

"और औरत आदमी का साथ न दे तब?"—डाक्टर ने पूछा।

"हुजूर, औरत को तो साथ देना ही चाहिए"--मैंने उत्तर दिया, "औरत आप जैसे मर्द का साथ क्यों नहीं देगी।"

"तुम कुछ नहीं समझती, इसलिए तुम्हारे लिए सब बात सीधी है। तुमको कोई क्या समझाये।"

"हाँ हुजूर, ठीक कहते हैं"—मैंने कहा, "समझती भी हूँ। आपकी बात और है और हमारी बात और है।"

"हाँ, वैसे तुम समझ लेती हो"--साहब ने मेरी ओर देख कर कहा।

उस समय पहली बार लगा कि साहब को मुझसे बात करके सान्त्वना हुई। मैं उन्हें अच्छी लगी।

स्वयं मुझे संकोच अनुभव हुआ, परन्तु अच्छा भी लगा। साहस कर बोली—"हुजूर, क्या इतना नहीं समझती हूँ कि आप बड़े आदमी हैं, आपके मन में हम लोगों के लिए, बाल बच्चों के लिए रहम है। यह आपका अपना देश और अपनी बिरादरी थोड़े ही है। चाहे यहाँ उमर भर रह जायें परन्तु अपना देश तो याद आयेगा ही।"

"हमारा देश"—साहब बोले "हमारा देश क्या है, हमने तो यहीं अपना देश मान लिया था।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साहब के स्वर की खिन्नता और निराशा से बड़ा दुःख हुआ। सोचा— हाय मैं क्या कह बैठी। मेरी उदासी भाँप कर उन्होंने कहा—

"तुम उदास क्यों होती हो। हम क्या नहीं समझते।"

मैं जाने के लिए उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़ कर प्रार्थना की "हुजूर के चरण हमारे यहाँ आयें। बच्चे और उनका बाप भी दर्शन पा लेगा।"

"तुम भागवान् हो, तुम्हें किस बात की कमी है"—साहब अपने ध्यान में डूबे हुए बोले, "बिटिया कैसी है? तुम्हारी बिटिया तो खूब सुन्दर है।"

"ठीक ही है हुजूर।"

"उसको दवा दिया था, कुछ फायदा हुआ?"

"हुजूर, बाँझ ही रहती तो अच्छा था।"

"क्यों, ऐसा क्यों कहती हो? तुम तो दवा माँगने आयी थी।"

"हुजूर, तब क्या मालूम था, भाग्य में क्या है—जाने किसका बच्चा है।"

"तो ऐसा ही होता है"—डाक्टर ने कहा "बहुत बार ऐसा ही होता देखा।"

"अब चली जायेगी, रह नहीं पायेगी"—मैंने कहा, "लड़की छुटके को बहुत चाहती थी। उसी के लिए सब कुछ हुआ। नासमझ थी। घर में कैसे रह पायेगी?"

"बच्चा हो जायेगा तो सब ठीक हो जायेगा"—डाक्टर ने कहा "बच्चा तो मा का बच्चा, चाहे जिसका हो।"

"हुजूर ठीक कहते हैं"—मन की ग्लानि दबा कर मैंने स्वीकार किया, "परन्तु हम लोगों में ऐसा नहीं चल सकता। लोग जीने नहीं देंगे"।

डाक्टर साहब मेरी ओर देखते रह गये।

"बस, तुम लोगों को इसी बात का ख्याल है कि लोग क्या कहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जहाँ जाओ, यही झगड़ा है। बकने दो लोगों को"--डाक्टर साहब क्रोध में कह रहे थे, "ऐसी मुसीबत बड़ों के लिए ही है; लेकिन तुम्हारा भी वही हाल है"।

मैं घर की ओर लौट पड़ी। सोचती जा रही थी कि डाक्टर साहब बात तो ठीक कह रहे हैं। मन में कुछ सान्त्वना का अनुभव हुआ। इरा के बाप ने भी कुछ ऐसी ही बात कही थी। उन दोनों की क्या बराबरी; परन्तु इस मामले में उन दोनो का ख्याल एक-सा ही था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[१९]

डाक्टर कैनी लौटे तो हम लोगों पर विशेष कर सिलवा पर उनका प्रभाव कैसे न पड़ता। सिलवा खेती-बाड़ी के काम में ही पैदा हुआ और उसने वही बचपन से देखा-सुना और सीखा था; परन्तु उस काम के प्रति उसे आकर्षण नहीं था। लड़का अपने भाइयों की तरह मेहनती और नेक भी था, परन्तु उन्हीं की तरह खेती में उसे अरुचि भी थी। काम वह सब जानता था, परन्तु जैसी बाप के हाथों में बरकत थी वैसी उसके हाथ में नहीं थी। उसका बोया बीज ही न उगता।

एक दिन वह खेत से लौटा तो कंधे पर लिये फावड़े को एक तरफ पटक कर बोल उठा—"यह काम मेरे बस का नहीं है। किसानी मुझसे नहीं होती। मेरा किया सब बेकार जाता है? कब तक इसमें जूझता रहूँगा।"

"बेटा, तो फिर करोगे क्या? हम लोग नहीं रहेंगे तो फिर होगा क्या?"—मैंने पूछा।

सिलवा चुप रह गया और बाहर आँगन से परे खेतों की ओर देखता रहा। परन्तु सोच कुछ और ही रहा था। बोला:—

"कैनी साहब अस्पताल बना रहे हैं। उन्हें आदमी की जरूरत है साहब मुझे काम के लिए बुला रहे थे।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"भैया, तू उनके यहाँ क्या करेगा?"

"साहब सब कुछ सिखला देंगे। साहब कह रहे थे, तू पढ़ा लिखा है, सब कुछ सीख जायेगा।"

सिलवा ने भी अपने भाइयों की तरह पढ़ना-लिखना सीख लिया था। जितना मैं जानती थी, मैंने स्वयं सिखाया था, बाद में वह सब कुछ अपनी मेहनत से सीखता रहा। उसकी इसमें बहुत रुचि थी।

"मैंने बाप से बात की थी"—सिलवा ने झिझकते हुए कहा, "कह रहे थे, अच्छा तो है।"

मैंने भी मुस्करा कर समर्थन किया—"तो मैं कब मना कर रही हूँ।"

"तो ठीक है"—सिलवा संतोष पाकर बोला "अम्मा, मैं डर रहा था कि तुम बिगड़ोगी।"

"नाराज क्यों होंगे"—मैंने कहा, "यही सोचती हूँ कि कोई लड़का धरती को नहीं सँभालना चाहता। जाने दो, तुम लोगों का जिस तरह भला हो।"

"ठीक है अम्मा"—सिलवा ने विश्वास दिलाया, "दुनिया में काम की कमी थोड़े ही है। धरती से क्यों बँधे रहें?"

हम दोनों चुप बैठे सोचते रहे। मन ही मन सोच रही थी, लड़के को कैसे समझाऊँ—लोग क्या क्या बातें बनायेंगे, कई तरह के लांछन लगायेंगे; तब लड़के को कैसा लगेगा। परन्तु उन बातों के लिए लड़के की जिन्दगी क्यों खराब करूँ। मेरी दृष्टि उसकी ओर चली गयी। आँखें चार हुई तो वह बोल उठा—

"लोगों के बकने की कौन चिन्ता करे। मैं सब समझता हूँ, ऐसी बातों से तुम भी नहीं डरतीं।"

"ठीक है बेटा"—मैंने सान्त्वना पाकर कहा, "तुम समझते हो तो सब ठीक है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परस्पर विश्वास से एक दूसरे की आँखों में देख हम दोनों ही मुस्करा दिये।

मैं डाक्टर साहब के यहाँ गयी।

"हुजूर, फिर आप ही के द्वारे आये हैं, आप ही का सहारा है"—मैंने कहा, "लड़का बहुत खुश है। वह तो समझता है। कि उसके भाग खुल गये।"

"वह हमारी ही मदद करेगा"—डाक्टर साहब बोले, "हम अकेले क्या कर सकते हैं? कस्बा कितना बढ़ गया है। बहुत आदमियों की जरूरत है। लड़का होशियार है। सबसे पहले वही काम सीखेगा।"

"हुजूर, क्या पहले से बड़ा दवाखाना बनायेंगे?"—मैंने पूछा।

"हाँ"—डाक्टर साहब बोले—"तब तो सिर्फ डिस्पेंसरी थी अब पूरा अस्पताल होगा। आओ तुम्हें दिखायें।"

डाक्टर साहब बहुत से कागज और नक्शे दिखा कर मुझे बतलाने लगे। उन कागजों को मैं क्या समझती; परन्तु इतना समझ गयी कि बहुत बड़े काम की तैयारी कर रहे थे।

"हुजूर, इतना रुपया कहाँ से आयेगा?"—मैंने अचम्भे से पूछा, "इसमें तो कई सौ रुपया लग जायेगा।"

"हमारे पास हजारों रुपया है"—डाक्टर साहब बोले।

"हुजूर, हमें क्या मालूम था"—मैंने कहा—"आप तो हम जैसे गरीबों की तरह ही रहते थे।"

"रुपया हमारा नहीं है, हमने इसी काम के लिए माँग कर इकट्ठा किया है। हम रुपया जमा करने ही गये थे।"

"हुजूर क्या अपने देश में?"—मैंने पूछा, "अपने लोगों से?"

"हाँ, कुछ अपने देश से भी लिया"—डाक्टर साहब ने उत्तर दिया, "और कुछ यहाँ के लोगों से लिया। तुम हैरान क्यों हो?"

"हुजूर, मैं समझ नहीं पाती"—मैंने विस्मय प्रकट किया—"जो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोग हमें जानते नहीं, जिन्होंने कभी देखा-सुना नहीं, वे हमारे लिए रुपया क्यों दे देंगे?"

"उनके पास रुपया है"-- डाक्टर साहब बोले, "उन्होंने यहाँ की हालत तो सुनी है। सभी जानते हैं कि अस्पताल नहीं है, इसलिए बीमार लोग गलियों में गिर-गिर कर मरते हैं, सड़क किनारे बच्चे पैदा होते हैं। तुम लोग बोलोगे ही नहीं तो किसी को कैसे मालूम होगा। चुप दम घोट कर मर जाओगे तो कौन सुनेगा।"

"हुजूर लोग कहते हैं.....।"

"लोग कहते हैं तो कहने दो"--डाक्टर ने उत्तेजना में मुझे टोक दिया--"दरिद्रता में एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर भूखे मरने में क्या पुण्य है?"

मैं चुपचाप सोचती रही--अपना दुःख रो-रोकर पुकारने से ही क्या फायदा। अपने दुर्भाग्य को साहस से झेल लेना ही तो आदमियत है। हमारा दुःख-दारिद्रय कौन दूर कर सकता है? कौन हमें जीवन भर पालता रहेगा? जो दरिद्र पैदा हुआ उसकी दरिद्रता कौन मिटा देगा? भले-बुरे दिन तो आते ही रहते हैं, जैसे धरती पर गरमी-बरसात और जाड़ा आता है। जो सहना ही है उसमें रोना क्या!

डाक्टर साहब मेरे मन की बात भाँप गये और ग्लानि के स्वर में बोले--"तुम लोग गूंगे पशु हो। समझते हो, दरिद्रता में पेट दबा कर बैठे रहना बड़ा भारी धर्म है। जब आँतें भूख से कुलबुलाती हैं और पीड़ा से हाय-हाय करते रहते हो तो तुम्हारे मन में कौन धार्मिकविचार आते हैं?"

"साहब, हमारे साधू-महात्मा लोग तो तपस्या में शरीर को गला डालते हैं। उपासे रह कर तप करते हैं। कहते हैं, तप और संतोष से स्वर्ग मिलता है।"

डाक्टर साहब सिर पर हाथ मार कर बोले, "जाओ बाबा जाओ, तुम्हारा तप और धर्म हमारी समझ में नहीं आता। तुम जाओ, हमार दिमाग मत खराब करो।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शहर और कस्बे की घनी बस्ती में प्रकृति और ऋतुओं में होते परिवर्तन कम मालूम होते हैं। कुछ भी तो प्राकृतिक अवस्था में नहीं रह जाता। धरती को ईंट पत्थर और तारकोल से ढक कर सड़कें और गलियाँ बना दी जाती हैं। सब ओर खड़ी ऊँची दीवारें दृष्टि का रास्ता रोके रहती हैं। बाजारों और गलियों में चलते समय इधर उधर पड़े कूड़े-कचरे और गलाजत से बचे रहने की सावधानी के कारण आँखें धरती पर गड़ाये रहना पड़ता है! आगे पीछे से आते-जाते लोगों और सवारियों के धक्के की इतनी आशंका रहती है कि आकाश की ओर आँख उठा नहीं पाते। प्रातः-संध्या और समय का आना-जाना घड़ियाँ ही बताती हैं, परन्तु शहर के पड़ोस में लगे खेतों में रह कर भी हम लोग प्रकृति के सम्पर्क में रहते हैं। आकाश और पृथ्वी पर नित्य आते-जाते परिवर्तनों का स्पंदन अनुभव करते रहते हैं।

जाड़े के फूल गेंदा-चमेली, गुलाब और चम्पा, चैत की गरमाती हुई वायु से मुरझा गये। अमलतास, गुलमोहर और बेला फूलने लगे। इरा के दिन पूरे हो गये थे। लड़की को दर्द उठने लगे तो मैंने लड़के और बाप से परदा करने के लिए कोठरी के दरवाजे पर चटाई खड़ी कर दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम लोगों के यहाँ एक ही कोठरी या छप्पर होता है। प्रसव के समय मर्दों को दूर रखने के लिए ऐसी ही रीति है। कोठरी को बहार कर मैंने लीप दिया और छुटके के समय स्वयं जिस फूस की चटाई पर लेटी थी, वही लाकर इरा के लिए बिछा दी। पेड़ों तले जाकर टोकरी भर गिरे हुए फूल चुन लायी और चटाई पर बिछा दिये।

"गर्मियों के बच्चे अच्छे तगड़े होते हैं"—मैंने इरा से कहा।

लड़की के चेहरे पर मुस्कान आ गयी। फूलों की पंखुड़ियों को हाथ से सहेजती हुई बोली :—

"लगता तो ऐसा ही है।"

मुझे याद आ रहा था कि उस कोठरी में उससे पहले कितने ही जन्म हो चुके थे। सबसे पहले स्वयं इरा, फिर कई वर्ष के बाद पहला लड़का। तब लगभग साल के साल लड़के होते रहे। सदा ही आशा और चिन्ता, जैसा कि प्रत्येक प्रसव से पहले होता है, अनुभूत होती थी; परन्तु इस बार आशंकाओं का टिड्डी दल मेरे मस्तिष्क पर झपटा पड़ रहा था। क्या होगा? साहब तो कहते थे कि बच्चा तो बच्चा। ब्याहे हुए आदमी से हो या जैसे भी हो, बच्चा तो मा का होता है। कहने को ठीक हैं; परन्तु भरोसा तो नहीं होता। मर्द अपनी औरत को देख कर भी उत्तेजित होता है। उत्तेजना तो होती ही है, फिर भी आदमी को अपनी औरत का ख्याल होता है। तब दो हृदयों में जलती आग का संगम होता है, दो शरीरों का संगम होता है, परन्तु मर्द अपनी पत्नी के सहारे रहता है। उसे उसकी चिन्ता रहती है, जितना औरत से पाता है उतना देता भी है। स्त्री उसको अपनी होती है। वह क्षण भर की बात नहीं होती। एक चिरस्थायी जीवन भर का संबंध होता है। स्त्री उसका बीज लेकर उसकी आँखों के सामने फलवती होती है। मर्द अपनी स्त्री में अपनी संतान को पनपते देखता है, इसलिए भविष्य के विचार से शुभकामना से समृद्धि के लिए अपनी पत्नी को ग्रहण करता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परन्तु जब पुरुष गली-बाजार में किसी स्त्री को देखकर उत्तेजना प्राप्त करता है तो दूसरी ही बात होती है। पुरुष कटाक्ष से या खाँस कर एक संकेत करता है। रुपया अठन्नी खनका कर उसे दिखाता है। पन्द्रह मिनट-आधे घन्टे के लिए उसे अपना लेता है। स्त्री कुछ बोल नहीं सकती। मर्द दाम देकर मनचाही करता है। उसे स्त्री से कोई संबंध नहीं, उसके भविष्य की कोई चिन्ता नहीं। मर्द पैसा देता है और अपनी उत्तेजना शांत कर लेता है। इसके बाद मर्द औरत को धक्का देकर भीड़ में खो जाता है। औरत किसी अंधेरी कोठरी में जा छिपती है या बाजार की तड़क-भड़क और शोर में दूसरा गाहक खोजने चल देती है। शहर में इकट्ठी होती रहती हजारों की भीड़ में से, जाने किस गाँव का कौन आदमी इस बच्चे का बीज डाल गया, जाने उसे कैसा-क्या रोग रहा हो। उस आदमी को क्या परवाह होती। अपने काम का परिणाम तो उसे सँभालना नहीं था। नारी के उत्तेजक, कोमल अंगों को दबा कर संतोष पा लेने से उसका काम पूरा हो गया और वह उसे भूल गया।

इरा के मन में क्या आशंका और भय था, मैं जान नहीं सकी। सम्भव है, अपने एकान्त के क्षणों में उसने उस आशंका और भय में डूब-डूब कर भाग्य का सामना करने का साहस बाँध लिया था या बच्चों के प्रति उसके आकर्षण और मोह ने आशंका और भय की ओर उसका ध्यान जाने ही नहीं दिया। सन्तानवती होना उसके लिए स्वाभाविक था। इसी प्रयोजन के लिए प्रकृति ने उसके शरीर को गढ़ा था। यह भाग्य की विडम्बना थी कि प्रकृति ने अपना प्रयोजन इस तरह पूरा किया।

प्रसव का समय आ गया। मैं लड़की को सँभाल रही थी। मेरे मस्तिष्क के आकाश में भविष्य के भय और आशंकाओं का टिड्डी दल भरा हुआ था। प्रति क्षण वह भविष्य वर्तमान बनकर बीतता जा रहा था। बच्चा मेरे हाथों में आ गया। भय और आशंकाएँ तथ्य बन कर मेरे हाथों में थीं, जिन्हें वासना और उत्तेजना के कारण लड़की की क्षणिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अस्थिरता में कोई अनजाना आदमी उसे सौंप गया था। संतान का सम्पूर्ण भविष्य बज्र गिरने से चूर-चूर हो जाने वाले काँच के महल की भांति मेरे सामने बिखर गया।

बच्चे को मैं लड़की की आँखों से बचाये रही। उसे नहलाया और उसके अंगों पर तेल मलने लगी। जानबूझ कर, मिथ्या आशा में अपने को ठगने के लिए उसके शरीर पर तेल मलने लगी कि उसकी त्वचा की सफेदी में तेल लगाने से रंग आ जाय। बच्चा तन्दुरुस्त था और ऊँचे स्वर में चिल्ला कर रो रहा था। इरा ने बच्चे को माँगा। मैंने उसे कपड़े में लपेट कर उसकी गोद में दे दिया। अब भी मिथ्या आशा थी कि लड़की उसकी त्वचा का रंग नहीं देख पायेगी।

"लेना अपने बेटे को"--आशंका से धड़कते हुए हृदय से इरा की ओर झुक कर मैंने कहा।

"हाय कितना प्यारा है"—इरा निष्पलक बच्चे का मुँह निहारती हुई बोली, "कैसा गोरा! फूल सा सुन्दर!"

गोरा! बच्चा कितना गोरा था। वह गोरापन कितना भयावह और अस्वाभाविक था। उसकी चाँद पर कहीं-कहीं उगे रोयें जैसे बाल पीले, सुनहले थे; आँखें भूरी और नीली। परन्तु इरा को यह अनोखापन दिखाई नहीं दे रहा था। मैं विस्मित थी; क्या लड़की पागल हो गई है। यह सब उसे कैसे दिखाई नहीं देगा? या मा बन जाने के संतोष और अहंकार में वह इस अनोखेपन की ओर ध्यान नहीं देना चाहती, इसे स्वीकार नहीं करना चाहती? या अपनी संतान के इस अनोखेपन के भय को हृदय में छिपाकर प्रकट नहीं करना चाहती? यदि वह इस भय को मन में छिपाये है तो यह कितनी भयंकर मानसिक यातना होगी? परन्तु वह इस भय को पूर्ण रूप से छिपाये थी। चिन्ता या आशंका का कोई चिह्न उसके चेहरे पर नहीं था। वह अपने बच्चे में डूब कर सब कुछ भूली हुई थी। वह उसे पुचकारती, दुलराती और लाड़ में उसके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्मुख कुरलाने लगती। इरा की आँखों में वह अद्भुत सौन्दर्य का पुंज था परन्तु हम लोगों के हृदय, विशेष कर उसके बाप का हृदय, चिन्ता के बोझ से फटे जा रहे थे।

"लड़की पागल हो गई है"—उसके बाप ने चिन्ता से कहा, "इसे बच्चे का रूप-रंग दिखाई ही नहीं देता। कोई अनोखापन नहीं देख पाती। उसके लिए तो गोरा और सुन्दर है। उसे यह दिखायी ही नहीं देता कि बच्चा फिरंगी का है। कम्बख्त ने अपना और लड़के का जन्म बर्बाद कर दिया। पागल समझती ही नहीं। दोष मेरा ही है।" बाप ने सिर दोनों हाथों में थाम कर कहा, "मैं ही उसे रोक नहीं पाया।"

"चुप भी रहो"—मैंने कहा, "तुम अपना दिमाग क्यों खराब करते हो? तुम्हीं क्या कर लेते? वह क्या तुम्हारे बस में थी?"

"यह बुढ़ापे में क्या मुसीबत आ गयी!"

"जो होना था सो हो गया। लड़की खुश है, बच्चा भी तन्दुरुस्त है।"

"देखा नहीं तूने" इन्होंने कहा "बाहर ले जाओ तो आँखें झपकाकर मुंह फेर लेता है। उसे कोठरी में ही भला लगता है। अभी से बाहर जाते शरमाता और डरता है, जैसे मन में भय हो।"

"पागल हो तुम"—मैं बोली, "बच्चे की आँखें कमजोर हैं, इसलिए धूप में झपक लेता है। कैनी साहब कह रहे थे कि बच्चे की आँख कमजोर होती है तो धूप नहीं झेल सकता।"

"अरे कौन जाने क्या है"—इन्होंने कहा, "जो भी हो, उसमें भलाई क्या है। आदमी तो धूप में ही रहेगा, कोई चमगादड़, साँप या बनबिलाव तो है नहीं कि अँधेरे में छिपा रहे।"

इरा के बाप की आशंका में कुछ अधिक ही भय दिखाई देता था। बच्चा केवल धूप में ही जाने से घबराता था। कोठरी में या पेड़ के नीचे उसकी आँखों को कोई कष्ट नहीं होता था। कोठरी में पड़ा-पड़ा या झूले में डाल से लटका वह पाँव का अँगूठा चूसता और किलकता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहता। बच्चे को धूप में ले जाते मुझे भी अच्छा नहीं लगता था। ऐसा लगता था कि धूप उसकी श्वेत पारदर्शी त्वचा से भीतर रक्त तक पहुँच जाती है और वह कच्चे माँस के लोथड़े जैसा लगने लगता। कुछ ही देर धूप में रखने से उसके शरीर में धब्बे से पड़ जाते और पपड़ी बन कर उसके दर्द होने लगता। हमारे बच्चे धूप और हवा में ही पनपे और बड़े हुए थे।

बात फैलने लगी और लोग बच्चे को देखने के लिए आने लगे। लड़के का रूप-रंग देख कर लोगों के ओंठ और पलकें खुले ही रह जाते। मुंह से बोल फूट न पाता। वे देखते ही रह जाते। लौटकर जाते तो काँच के खिलौने जैसे इस बालक के संबंध में अपनी कल्पना से न जाने क्या-क्या बातें वे सोचते। देखने वालों को अद्भुत आश्चर्य देख पाने का संतोष होता। देख कर वे हमारी चिन्ता के प्रति सहानुभूति की बातें बना जाते, परन्तु मन में हमारे दुर्भाग्य, बिपदा और आशंका से संतुष्ट होकर चले जाते।

बच्चे को देखने के लिए भीड़ का आना हमारे लिए संकट बन गया। दिन भर लोगों का तांता बँधा रहता। आखिर इरा के बाप ने तंग आकर कह दिया :—

"एक दिन तय कर लो, लड़के का नामकरण कर डालें। जिस-जिसको आना हो, एक दिन लड़के को आकर देख जाय। रोज-रोज हमारे यहाँ भीड़ लगाने की जरूरत नहीं।"

हमारे सभी बच्चों का नामकरण जनम के दसवें दिन हुआ था। ऐसी ही रीति है। परन्तु इस बे-बाप के विचित्र प्राणी के लिए क्या रीति होती। मैं कुछ निश्चय नहीं कर पा रही थी कि उसका नामकरण कैसे कर पायेंगे। इरा के बाप ने नामकरण का दिन पक्का कर दिया तो मुझे बहुत संतोष हुआ कि बहुत बड़ी दुविधा दूर हुई।

नामकरण का दिन आया। हमारे संबंधी बिरादरी के लोग और परि-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चित भी आये। लड़के के लिए सभी लोग गन्ने, शकर या मिठाई की कुछ न कुछ भेंट लाये थे। इरा निस्संकोच मुस्करा कर यह भेंट ले-लेकर रखती जा रही थी। लोग उसके निस्संकोच और साहस को देख कर स्तब्ध थे। बुढ़िया दादी भी लाठी टेकती हुई कस्बे से आयी। मेरे हाथ में एक रुपया थमाकर बोली—"दोहते के लिए मेरी तरफ से रख ले।" मैंने बहुत इनकार किया, पर बुढ़िया बिगड़ने लगी। अगर यह मालूम होता कि बुढ़िया अपनी अंतिम सम्पत्ति मुझे सौंपे दे रही थी तो उसके बिगड़ने की परवाह न करती। उसे धन्यवाद देकर मैंने कहा—

"जानती हो दादी, तुम्हारा तो हमें सदा ही भरोसा रहता है।"

"मैं किस लायक हूँ, भगवान् तुम लोगों का भला करे"—बुढ़िया बोली, "लड़की के ब्याह का दोष तो मुझ पर ही है, मैंने ही तो इस लड़की का ब्याह कराया था।"

"दादी, इसमें तुम्हारा क्या दोष है, अपना अपना भाग है"—मैंने कहा।

दादी लाठी टेकती हुई बड़बड़ाती हुई चली गयी—"ब्याह मैंने कराया तो दोष मेरा नहीं तो किसका।"

दादी का क्या दोष था, इरा के बाप का भी दोष नहीं था, मेरा भी नहीं था। डाक्टर साहब कह रहे थे कि लड़के के बाप का भी दोष नहीं, यह तो होना ही था। मैं सोच रही थी तो फिर दोष समय का है, धरती का है, आकाश का है। इन्हें ही दोष दूं। ये तो आपत्ति करने नहीं आयेंगे।

"क्या झगड़ा है ? क्यों बोल रही हो ? तुम्हारा शरीर तो ठीक है"—इरा के बाप ने पुकारा। चौंक कर मैंने उत्तर दिया :—

"कुछ भी नहीं, बिल्कुल ठीक हूँ।"

"तू जाकर जरा लेट ले, जरा आराम कर ले"— इन्होंने कहा।

भीड़भाड़ में काली नहीं दिखाई दी थी। उसके जोड़ों में दर्द था,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इससे नहीं आ सकी थी। मुझे संतोष हुआ, वह बहुत ही बड़बोली थी। जाने क्या बक जाती। परन्तु दर्द ठीक होने पर वह एक दिन भारी भरकम शरीर से लंगड़ाती हुई आ ही पहुँची। जब से दिन फिरे थे, उस पर बहुत मुटापा चढ़ गया था।

"क्या बताऊँ, दर्दों के मारे आ नहीं सकी"--काली हाँफती हुई बोली, "बहुत जोर का बुखार आ गया था। जान पड़ता था, अबकी नहीं बचूँगी। अब शरीर साथ नहीं देता।"

"हाय ऐसा क्यों कहती हो, अब तो अच्छी लग रही हो"--मैंने कहा।

"अरे अब अपना क्या है, मैं तो दूसरी ही बात करने आयी थी तुझसे"--काली ने मेरे कान की ओर झुक कर कहा।

मैंने आशंका से उसकी ओर देखा। वह मेरी ओर और झुक आयी और बोली :--

"लोग कहते हैं, लड़का ऐसा गोरा-चिट्टा है, जैसे दूध हो।"

"हाँ-हाँ गोरा तो है"--इरा ने शांत स्वर में कहा, "देख लो न" और उसने सोते हुए लड़के को आगे बढ़ा कर दिखाया। काली ने लड़के को ओर झुक कर देखा। उसके विस्मय का अंत नहीं था। उसी समय बच्चे ने एक अँगड़ाई लेकर अपनी आँखें खोल दीं और रोने लगा। काली पीछे हट गयी और रूखे स्वर में बोल उठी--"ऐसा तो कभी नहीं देखा। इसकी तो आँखें लाल हैं। आदमी के बच्चे की आँख कहीं लाल होती है।"

मैं चुप रह गयी, क्या कहती। इरा के बाप को काली पर क्रोध आ गया, परन्तु कुछ कह नहीं सके। इरा का चेहरा गम्भीर हो गया। वह भी काली की ओर देख आँखें झुकाये चुप रह गयी। मैंनें सोचा, लड़के की अनोखी बात इरा भी महसूस करती है; परन्तु अपने मन को सँभाले है। सभी लोग चुप थे। सिलवा बोल उठा—"आँखें लाल हैं तो क्या हुआ। काली हुईं, भूरी हुईं या लाल हो गयीं तो उसमें क्या आश्चर्य।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सोलह वर्ष का वह लड़का बड़े-बूढ़ों की विज्ञता से बोला।

"लाल आँखें कभी देखी हैं?"—काली फिर बोली।

"तुमने नहीं देखीं तो अब देख लो, कौन जुल्म हो गया!"—सिलवा फिर बोला "तुम बड़ी-बूढ़ी हो, ढंग से बात करो।"

सिलवा रोते हुए लड़के की ओर बढ़ आया और उसे रिझाने के लिए चुटकी बजाने लगा। शक्रत्राणी (बच्चे) का ध्यान बँट गया। एक आध बार और रो कर उसके ओंठ फैल गये और वह हँसने लगा। हाथ उठा कर उसने सिलवा की उँगली पकड़ ली। सिलवा ने घूम कर काली की ओर देखा। काली रोष में बड़बड़ाती हुई चल दी थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[२१]

सिलवा दिन भर डाक्टर साहब के ही यहाँ रहता था। अस्पताल की इमारत की तैयारियाँ हो रही थीं। जगह जमीन खरीदी गयी, उसे साफ किया गया। इमारत बनाने के लिए ठेकेदार ढूंढ़े गये और मजदूर इकट्ठे किये गये। ईंटें-सीमेंट और दूसरा सामान बैलगाड़ियों पर आने लगा। जब इमारत बनने लगी तो सिलवा दिन-रात वहीं रहने लगा। वह ईंट पर ईंट धरी जाने और गारा-चूना लगाये जाने का काम ध्यान से देखता रहता। कभी राज-मजदूर एतराज न करते तो स्वयं भी काम में हाथ बँटाता। डाक्टर साहब और लड़का दोनों पागल की तरह अस्पताल की इमारत के पीछे लगे हुए थे। इमारत जल्दी पूरी न हो सकने से दोनों को बहुत बेचैनी थी। शायद उन्हें मालूम ही नहीं था कि इमारत बनने में कितना समय लगता है। सात बरस तक धैर्य बाँधे रखना सहज नहीं।

अस्पताल की इमारत का काम कायदे और ढंग से चलता तो बरस भर में ही पूरा हो गया होता और बुढ़िया दादी की मृत्यु कस्बे के बाजार में न होती। उस बेचारी के लिए दूसरा ठौर ही नहीं था। बाजार में ही उसका जीवन बीता था और वहीं उसकी मृत्यु भी हुई। बाजार में टाट बिछाये बेर और मूंगफली बेचते-बेचते उसका शरीर गिरता गया और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समाप्त हो गया। उसका कोई सगा संबंधी नहीं था, किसी को चिन्ता नहीं थी कि इसके पास कुछ खाने को है भी या नहीं। यह चिन्ता अपने सिर कोई क्यों लेता। एक दिन कुएँ की राह पर उसका मृतक शरीर पड़ा हुआ मिला। समीप ही एक मिट्टी का घड़ा पड़ा था और टाट की गठरी में समेटी हुई उसकी दूकान उसकी कमर से बँधी हुई थी। भूख ने उसके प्राण ले लिये थे।

भूखे को अन्न देने की चिन्ता करना कठिन होता है; परन्तु भूख से मर गये आदमी को अर्थी और कफन के लिए दान देने वाले बहुत लोग हो जाते हैं। शायद इसलिए कि इसमें रोज-रोज कुछ देते रहने पर बोझ पड़ने का डर नहीं रहता। बुढ़िया दादी के लिए भी अर्थी, कफन और फूल भी आ गये, चिता के लिए तेल और लकड़ी जुटा दी गयी। यहाँ तक कि चंदन और गुलाबजल भी आ गया। हमारे दोनों लड़कों के अंतकाल के समय यही हुआ था। विश्वास है कि हमारे लिए भी हो जायेगा। हम लोग मृतकों का ही आदर करते हैं।

बुढ़िया दादी की मृत्यु से मेरे मन को बहुत चोट पहुँची। जब से मैं सुसराल आयी, दादी का मुझे बहुत सहारा था। मन में बार-बार विचार आता कि दादी का वह रुपया न लिया होता तो बेचारी दस-पन्द्रह दिन और काट लेती। वह रुपया मुझे सदा खटकता रहता। इच्छा होती, उसे कहीं फेंक दूं या किसी भीख माँगने वाले को दे दूं। परन्तु वह रुपया मेरा नहीं, शक्रवाणी का था।

"तू भी क्या बच्चों जैसी बातें करती है?"—इरा के बाप बोले, "एक रुपया कितने दिन चल जाता।"

"कुछ तो चलता ही"—मैंने कहा।

"कुछ दिन के बाद क्या होता?"

"मैं क्या जानूं, भगवान् कुछ तो करते। यह अस्पताल ही बन गया होता तो बेचारी को शरण मिल जाती"—मैंने कहा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अस्पताल क्या खैराती खाना बाँटने का सत्र है?"—यह बोले। मैं उनकी ओर देखती रह गयी। मेरा अज्ञान दूर करने के लिए ये गर्व से बोले—"अस्पताल क्या दलिये का भंडारा बन जायेगा।"

"विलायत में मुफ्त दलिये का भंडारा चलता है, जहाँ गरीब मुफ्त खाना पा जाते हैं। सिलवा कहता है कि विलायत में ऐसा होता है।"

"सिलवा क्या जाने, वह कब विलायत गया?"

"उसने किताब में पढ़ा होगा, नहीं तो कैनी साहब ने बताया होगा उसे। मैं क्या जानूँ, कैसे जानता है।"

"खैर दलिये का भंडारा न सही"—मैं बोली, "अस्पताल बन गया होता तो बेचारी बीमार बुढ़िया को शरण मिल जाती।"

"तू तो अपनी कहे जा रही है"—ये चिढ़ गये, "तू जानती तो है नहीं, अस्पताल में बीमारी का इलाज होता है, बुढ़ापे का इलाज नहीं होता।"

अस्पताल की इमारत अभी बन भी नहीं पायी थी कि बीमार इकट्ठे होने लगे। लोग डाक्टर साहब के पास पहुँचते, सिलवा के पास जाते। सिलवा की मा के पास भी आने लगे। इतने आदमी आने लगे कि उनमें से दसवें भाग के लिए भी स्थान होना कठिन था। हम लोग किसी को क्या कहते। अस्पताल अभी बन ही नहीं पाया था। हमारे अपने मन भय और आशंका से सिहरते रहते।

इमारत का काम पूरा होने में कोई न कोई बखेड़ा खड़ा होता ही रहता। दो बार ठेकेदार बदलने पड़े। ठेकेदार बदले जाते तो कारिन्दे भी बदले जाते और फिर नये मजदूर लाने पड़ते। कभी आदमी कम पड़ जाते, कभी सामान नही पहुँच पाता। एक बार गर्मियों में मजदूरों की झोपड़ियों में आग लग गयी। आग बुझाई न जा सकी और इमारत के लिए जमा की गयी लकड़ी भी जल गयी। एक बार ईंटों और एक बैलगाड़ी की चोरी हो गयी। कैनी साहब और सिलवा पागलों की तरह इधर-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उधर घूमते रहते। कभी साहब के बाहर चले जाने से काम रुक जाता, परन्तु कुछ दिन बाद फिर शुरू हो जाता।

एक दिन सिलवा ने कहा—"काम कैसे हो, रुपया नहीं है, पैसा-पैसा करके जोड़ना पड़ता है।"

मैंने विस्मय से कहा—"साहब तो कहते थे कि रुपयों की कमी नहीं है।"

"तुम भी क्या कहती हो, रुपया इकट्ठा करना क्या आसान है"—सिलवा विज्ञता से बोला।

मैं सोचती रहती, जाने कहाँ से कितना रुपया ये लोग लाते रहते और वह सब कहाँ समा जाता.....। अपना दुख और कष्ट दूसरों को सुना देने से ही क्या होता। कोई आँखें और कान मूंद ले तो हमारा क्या वश चल सकता है। एक दिन यही बात मैनें साहब से कह दी। कुछ देर मेरी ओर देख कर वे बोले—"धीरज धरो, धीरे-धीरे सब कुछ होगा", और धीरे-धीरे अस्पताल की इमारत बनती ही गयी।

सिलवा अस्पताल का काम सीखने लगा और कुछ दिन बाद वह छोटी-मोटी बीमारियों का इलाज भी करने लगा। साहब उसे तनखाह भी देने लगे। तनखाह हर महीने न मिल पाती। साहब कभी बाहर से रुपया इकट्ठा कर लाते तो तनखाह मिल जाती। एक दिन मैं पूछ बैठी—"साहब, जब काम बहुत बढ़ जायेगा, आप बहुत लोगों को नौकर रख लेंगे, तब तनखाह के लिए रुपया कहाँ से आयेगा?" साहब पल भर चिन्ता में चुप रहे और फिर बोले—"तब भी कहीं न कहीं से हो ही जायेगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[२२]

सिलवा और इरा, भाई बहनों में बहुत बनती थी। इरा पाँच वर्ष के लिए ससुराल चली गयी थी, इस लम्बे वियोग से भी दोनों का स्नेह कम नही हुआ। इरा लौट आयी तो फिर दोनों में वैसे ही बनने लगी। इरा सिलवा के प्रति भाई की अपेक्षा पुत्र जैसा ही व्यवहार करती। सिलवा भी उसे बहुत श्रद्धा और आदर से मानता था। उसकी बात कभी न दुलखता। मेरी अपेक्षा भी वह इरा की भावना को अधिक समझता था। संभवतः मा-बाप अपनी संतानों को उतनी गहराई से कभी नहीं समझ पाते, जितना कि लड़के-लड़कियाँ आपस में समझते हैं। हमारे यहाँ तो लड़कों और लड़कों का हमसे चाहे मतभेद हुआ हो, परन्तु आपस में उनका सदैव मतैक्य ही रहा। कालो कहती थी—भई वे लोग पढ़े-लिखे हैं, इसलिए हमसे ज्यादा समझते हैं। परन्तु टेनेरी का झगड़ा उठने पर जब उसके भी लड़के उस मामले में फँस गये, तब कालो का विचार पढ़ने-लिखने के संबंध में बदल गया। वह कहने लगी—गाँव-देहात में सब झगड़े पढ़े-लिखे लोगों ने ही फैला दिये हैं।

इरा के लड़के से भी सिलवा को बहुत स्नेह था। बच्चे के गोरे होने पर भी सिलवा को कोई आपत्ति या आशंका नहीं थी। उसके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गोरे होने पर भी सिलवा को उसमें और घर की दूसरी संतानों में कोई अन्तर नहीं लगता। इसलिए इरा सिलवा को और अधिक मानने लगी। सिलवा सदा लड़के को गोद में लिये फिरा करता। उसे हाट-बाजार में लिये फिरने में भी उसे कोई संकोच न होता, परन्तु दूसरे लोग सिलवा की इस भावना को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। शक्रवाणी चार बरस का हो गया था और स्वयं भी अपने वर्ण-भेद की उपेक्षा नहीं कर पाता। वह गाँव के दूसरे बच्चों से अलग-अलग बना रहता, जैसे मुट्ठी भर चावलों में एक चने का दाना मिल जाय या काले कौओं के झुंड में सफेद कौआ आ बैठे। गाँव के लड़के उसे अपने खेलों में तभी बुलाते, जब एक लड़के की कमी पड़ रही हो। अपनी इच्छा से वह उनमें न हिल-मिल सकता। उसके शरीर पर धूप न सह सकने और चौंधिया जाने का तथ्य उसे दूसरे लड़कों से भिन्न और निम्न जाति का जीव बना देता। उसकी आँखों में पानी भर आने और छाया में जा बैठने से दूसरे बालकों को दया नहीं आती, बल्कि वे उस पर हँसने लगते। बच्चे ही क्या, बड़ी उमर के लोग भी उसे पहली बार देखने पर विस्मय से मुंह खोले रह जाते और उसके पुराने परिचित अहंकार से बोल उठते—"अरे, तुमने इसे आज ही देखा है" और फिर कई तरह की बातें शक्रवाणी को सुननी पड़तीं। जाने क्या- क्या प्रश्न उसके मन में उठते रहते।

एक दिन उसने मा से पूछ ही लिया—

"मा, हरामी क्या होता है।"

किसी बच्चे को इस प्रश्न का क्या उत्तर दिया जा सकता है। इरा विस्मय से उसकी ओर देखती मौन रह गयी। सोच रही होगी, बच्चा क्या समझता है या अनजाने में पूछ रहा है। उसे क्या और कैसे बतायें। इरा ने प्रश्न किया:—

"तू क्यों पूछ रहा है?"

"बताओ न मा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"मा नहीं चाहती और बच्चा हो जाता है तो उसे हरामी कहते हैं।"

शक्रत्राणी कुछ पल मा को ओर देख कर बोला--"अम्मा, तू चाहती थी मुझे?"

"हाँ, मेरे चाँद क्यों नहीं"--इरा का स्वर काँप उठा। संभवतः गर्भ गिरा देने के लिए उसने जो प्रयत्न किये होंगे, वे उसे याद आ गये होंगे। "तू तो मेरा चाँद जैसा बेटा है। तू क्यों पूछता है?"

"ऐसे ही पूछ रहा था अम्मा"--लड़के ने उत्तर दिया। अबोध बालक क्या जानता था कि मा के हृदय पर उसने कितनी गहरी चोट लगा दी थी।

कुछ दिन बाद शक्रत्राणी मा से फिर पूछ बैठा--"मा मेरा बाप है?"

"हाँ बेटा, है नहीं तो क्या।"

"कहाँ है मेरा बाप?"

"बेटा, बहुत दूर गया है।"

"यहाँ कभी नहीं आता?"

"आयेगा।"

"अभी क्यों नहीं आता।"

"अभी नहीं आ सकता"--इरा ने समझाया, "जब तू बड़ा हो जायेगा, तब समझेगा।"

"कब समझूँगा?"

"क्या मालूम बेटा--अब जा खेल, बच्चे इतनी बातें नहीं करते।"

एक झूठ और फिर बहुत से झूठ। झूठ बोलने के अतिरिक्त और चारा ही क्या था?

"तू कह देती कि तेरा बाप मर गया"--मैं इरा से बोली, "मर गया ही समझो; नहीं तो है ही कहाँ। बात समाप्त हो जाती।"

"तू क्यों बोलती है?"--इरा के बाप ने कहा, "जो कहना होगा लड़की अपने आप कह लेगी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इरा ने विषाद-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा--"ठीक कह रही हो मा, यही कह देती तो ठीक होता। मेरे मुँह से निकल गया। पहले सोचा नहीं था।"

"वह तो बच्चा है, ऐसी बात क्या पूछेगा"—मैं बोली--"पड़ोस के लड़के ही उसे सिखाते हैं।"

"अच्छा, अब रहने दे"--इरा के बाप ने कहा, "लड़की को परेशान मत करो।" इन्होंने इरा के सिर पर पुचकारने के लिए हाथ बढ़ा दिया, परन्तु लड़की लजाकर कोठरी से बाहर चली गयी।

मैं उठ कर लड़की के पीछे जाने लगी तो इन्होंने रोक दिया—"रहने दे, रहने दे, तेरे कहने से क्या होगा। अपने आप ही उसका दिल सँभलेगा।"

ये कुछ पल सोचते रहे और फिर स्वयं ही आँगन में जाकर लड़की का सिर चुपचाप हृदय से लगा लिया। इरा जोर से रो उठी।

मैं कोठरी में ही बैठी रही। मेरी आँखें भी छलक आयीं। सोचा—लड़की रो ले तो अच्छा है, उसका दुःख बह जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[२३]

मेरा तीसरा लड़का मुर्गन दूर शहर में नौकरी कर रहा था। उसने शहर की ही एक लड़की से ब्याह कर लिया। हम लोगों ने लड़की देखी नहीं थी, न हम लड़की के परिवार से ही परिचित थे। शक्रवाणी दो साल का था तो शहर में लड़की के घर पर मुर्गन का विवाह हो गया। हम लोगों की बहुत इच्छा थी कि लड़के के ब्याह पर शहर जाते, परन्तु यह हमारे वश का नहीं था। शहर का रास्ता सौ मील से अधिक था। हमारे पड़ोसी दिर्गन ने एक बैल और इक्का भी खरीद लिया था। वह थोड़े से किराये पर बैल और इक्का देने को तैयार हो गया, परन्तु उस साल फसल अच्छी नहीं हुई थी और सिलवा को भी बहुत कम पैसा मिल रहा था। सिलवा के बाप के शरीर में भी इतने लम्बे सफर की शक्ति नहीं थी, उमर भी तो पचास की हो गयी थी। कई बार जूड़ी काज्वर आ चुका था और जोड़ों में दर्द होने लगा था। हल चलाते, धान रोपते या कोई दूसरा खेत का काम करते बेचारा थक कर कमर सीधी कर लेने के लिए खड़ा हो जाता। शरीर काँपने लगता। कभी खेतों में जाने की सामर्थ्य भी न होती तो कोठरी में लेटा रहता। मैं और इरा सामर्थ्य भर जमीन का काम करतीं, परन्तु धरती तो मर्द के ही वश में आती है, औरत के नहीं। खेती का भारी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

काम हमारे वश का नहीं था। डाक्टर साहब कभी-कभी आकर इन्हें देख जाते। आते तो दवा और कुछ खाने को दे जाते। मुझसे उन्होंने कहा, "तुम्हारे आदमी को पूरा खाना नहीं मिल रहा है।"

"हुजूर, फसल अच्छी हो जाती है तो भर पेट ही खाते हैं"—मैंने उतर दिया। परन्तु कभी कड़े दिन भी आ ही जाते हैं।"

"सदा कड़े ही दिन रहते हैं तुम्हारे"—डाक्टर साहब ने कहा, "तुम्हारे आदमी को दूध पीना चाहिये, मक्खन खाना चाहिए, तरकारी खानी चाहिए। हमेशा रूखा भात खाने से नहीं चलेगा।"

मैं साहब की ओर विवशता से देख कर बोली—"हुजूर, फसल अच्छी नहीं होगी तो यह सब कहाँ से मिलेगा? ऐसा खाना हम गरीब लोग हमेशा तो नहीं खा सकते।"

"ठीक कहती हो तुम"—डाक्टर साहब ने धीमे स्वर में स्वीकार किया, "हम भी देखते हैं।" एक दिन डाक्टर साहब बोले, "तुम्हारा आदमी बहुत फिक्र करता है। फिक्र करेगा तो तबियत ठीक नहीं होगी। उसे समझाओ, फिक्र न करे।"

"हुजूर, क्या समझाऊँ"—मैं बोली "फिक्र कैसे नहीं करेगा। जानता है, उसके बाद हम लोगों का कोई सहारा नहीं।"

मैं कह तो गयी, परन्तु मन में ग्लानि मालूम पड़ी। डाक्टर साहब समझेंगे, मैं बहुत स्वार्थी हूँ। मुझे अपनी ही चिन्ता है। इसलिए कहा—

"हुजूर, जितना बन पड़ता है, मैं करती हूँ, परन्तु उसे दूसरों की भी तो फिकर है।"

"जानते हैं, ठीक कहती हो"—डाक्टर साहब सहानुभूति से बोले, "तुम लोगों के और कोई नहीं है क्या?"

"और कौन है हुजूर? बहनों के अपने बाल-बच्चे हैं और वह यहाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से बहुत दूर हैं। वर्षों बीत गये, उनकी कोई खबर नहीं मिली। लड़के हैं, पर वे दूर परदेस में पड़े हैं।"

साहब चुपचाप सुन रहे थे। उनके चेहरे पर सहानुभूति की पीड़ा स्पष्ट थी। फिर मन में ख्याल आया, यह सब कह कर उन्हें दुखी करने से क्या लाभ? उन्होंने दोनों हाथ उठाकर अपना मुंह ढक लिया।

"साहब, यह सब तो ऐसे ही चलता है। इतनी कट गयी, और भी कट जायेगी"—मैं बोली।

"तुम्हारा एक लड़का रह गया था, वह हमने छीन लिया"—साहब बोले, "उसके बदले में तुम्हें तो कुछ दिया नहीं।"

साहब की इस सहानुभूति से द्रवित होकर मैं कुछ कह न पायी। कृतज्ञता के उद्गार ने बोल पाना और भी कठिन कर दिया।

"साहब, आपने क्या छीन लिया, कुछ भी नहीं छीना"—मैं बोली, "सिलवा का मन खेती में लगता ही कब था। बाप की तरह वह खेती कभी कर नहीं पाता। आप क्यों फिकर करते हैं। वह आपके साथ खुश है, हमें भी इससे संतोष है।"

"इससे तुम्हें क्या संतोष होगा? लड़का तुम्हारे हाथ से तो गया।"

"नहीं हुजूर, ऐसा कोई ख्याल नहीं है। लड़के के खिलाफ हम कुछ नहीं चाहते। उसने जो किया ठीक किया।"

हम दोनों चुपचाप सोचते रहे। साहब फिर बोले—

"तुम लोगों ने कुछ तो सोचा होगा। जब तक हाँथ-पाँव चलते हैं, कुछ सोच लेना चाहिए।"

"सोचते क्यों नहीं हुजूर, पर हम लोगों के वश में क्या है?"

"क्या कुछ भी नहीं कर पाओगे?"—साहब ने पूछा।

"क्या कर पायेंगे हुजूर। हमारे जैसे हजारों लोग ऐसे ही काटते हैं, आप तो देखते हैं।"

"ठीक कहती हो तुम, देखते तो रोज ही हैं"—साहब अपने आपसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बात करते हुए बोले, "हाँ क्या हो सकता है। किसी के लिए भी कुछ नहीं हो सकता। न बूढ़ों के लिए न जवानों के लिए और न बीमारों के लिए। तुम लोग तो बस, सह लेना ही जानते हो।"

"साहब, आप हम लोगों के लिए क्या फिकर करेंगे"—झिझकते हुए बोली, "हमारे तो भगवान् ही मालिक हैं।"

साहब ने मानो सहसा स्वप्न से जाग कर मेरी ओर देखा और फिर चल दिये। इरा का बाप कोठरी में लेटा हुआ था। उसने पूछा, कहो, क्या बात हुई? बहुत देर बात करते रहे।

"हाँ, ऐसे ही बात करते रहे।"

"तो क्या बात करते रहे?"

तुम पूछे जा रहे हो, क्या बताऊँ। यही सिलवा के बारे में बात कर रहे थे। साहब कह रहे थे, खूब काम सीख रहा है।

"अच्छा ही है। साहब मेरी बाबत क्या कह रहे थे।"

"यही कि तुम बहुत फिकर करते हो, ज्यादा फिकर न करो तो तबियत ठीक हो जाय।"

"कैसो फिकर, क्या कह रहे थे?"

"यही कि अब तुम्हें आराम करना चाहिए।"

"छिपा रही हो तुम। न बताओ, मैं सब समझता हूँ। जल्द ठीक हो जाऊँगा मैं।"

कुछ दिन बाद इनकी तबियत ठीक हो गयी। और साल भर के लगभग चंगे-तगड़े रहे। अच्छे भले दिन बीत रहे थे, तब हमारे भाग्य फूट गये।

मैं सुबह-सुबह खेतों से गोबर बटोरने गयी थी। लौटी तो उससे पहले ही शिवजी आकर चला गया था। ये धरती पर बैठे एकटक सामने देख रहे थे। खुले हुए होंठ हिल-हिलकर रह जाते। चेहरे पर मूर्छा जैसा भाव था। शत्रुवाणी घुटने समेटे एक कोने में पड़ा चौंधियाई हुई गुलाबी आँखों से नाना को ओर देख रहा था। देख कर मुझे आशंका हुई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कि कहीं इनकी तबियत तो नहीं खराब हो गयी। मैंने लड़के को बाहर आँगन में भेज दिया और पूछा, तबियत कैसी है। इन्होंने सिर हिला कर उत्तर दिया—"ठीक ही है।" मैं घड़े से एक प्याले में पानी ले आयी। इनके सामने रखकर अनुरोध किया, थोड़ा पानी पी लो, जी ठीक हो जायेगा। इन्होंने मेरी बात रखने के लिए प्याला लेकर पी लिया। इनके हाथ काँप रहे थे, कुछ पानी बिखर गया। मैं इनके पास ही बैठ गयी।

"खेत छोड़ने पड़ेंगे"—इन्होंने कहा, "शिव जी आया था, कह गया है, अब कुछ नहीं हो सकता।

मुझे विश्वास नहीं हुआ। विस्मय और आतंक से उनकी ओर देखती रह गयी।

ये सिर हिला कर बोले:—"टेनेरी के मालिक यह जमीन भी ले रहे हैं। वे लोग बड़ी कीमत दे रहे हैं।"

टेनेरी का नाम सुनकर फिर शंका का कारण नहीं रहा।

"कोई कैसे ले सकता है"—मेरे मुंह से निकला, "जमीन हमारी है। हम तीस बरस से इसे जोत रहे हैं।"

इनके हाथ काँप रहे थे। बोले—'शिवजी कहता है कि जमीन तो बिक गयी, रजिस्ट्री भी हो गयी। हमें जगह खाली करनी पड़ेगी।"

मन में आया, चिल्ला कर कहूँ—"हम कहाँ जायें।" परन्तु इस प्रश्न का उत्तर कौन देता, इसलिए मन को दबा कर रह गयी। परन्तु यह बोल उठे— "हम जायेंगे कहाँ, क्या करेंगे?"

"कब जाना पड़ेगा?"—मैंने पूछा।

"पन्द्रह दिन का समय दिया है। यही मेहरबानी समझो।"

मस्तिष्क में इतने प्रश्न और बातें एक साथ आ घुसीं कि कुछ सोचना समझना ही संभव न था। सिर चकरा रहा था। मन में कहा, ऐसे क्या हो सकता है, सोच-विचार कर ही कुछ करना होगा। साहब तो पूछ ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहे थे कि हमने क्या सोचा है; परन्तु क्या खबर थी, ऐसे आ पड़ेगी।

"जाने वे लोग उस धरती का क्या करेंगे", मैं अपनी चेतना बनाये रखने के लिए बड़बड़ाने लगी--"यह तो धान बोने लायक ही जगह है। इस दल-दल में इमारत थोड़े ही बन सकती है।"

इन्होंने दोनों हाथ घुटनों पर रख कर कहा—"भई, बड़े लोग सब कुछ कर सकते हैं। पानी निकलवा देंगे और मिट्टी डलवाकर जगह ऊँची कर देंगे। क्या मालूम यहाँ धान की ही खेती करना चाहते हों।" यह भी यों ही बोले जा रहे थे कि चुप रहने से मूर्छा न आ जाय।

हमें यहाँ से ले जाने को है ही क्या? कोठार में अनाज तो चुक ही गया है। हम दोनों चुप बैठे रहे। जिस दिन पहले-पहल गाँव में इमारती सामान से भरी बैलगाड़ियों की कतारें आयीं थीं, उसी दिन से मेरे मन में यह आशंका बनी रहती थी कि यह टेनेरी एक दिन हमें निगल जायेगी। टेनेरी ने आकर हमारी हरी-भरी धरती को रौंद डाला और धूसर इमारतों से जगह घेर ली। तब से वह खेत पर खेत निगल कर बढ़ती ही जा रही थी। हमारे गाँव का रूप बदल गया था और हमारे गाँव के आदमी भी बदल गये थे। टेनेरी में रुपये की असीम ताकत थी। उसे रोक सकने की शक्ति किसी में नहीं थी। बहुत से लोग टेनेरी से रोटी का टुकड़ा पाते थे, बहुतों को उससे आशा थी। ऐसे लोगों को टेनेरी का आतंक महसूस नहीं होता था। यदि हमारे लड़के गाँव में बने रहते तो संभवत: हम भी ऐसा ही सोचते। परन्तु अब हमारी अवस्था दूसरी ही थी। कभी हमें टेनेरी से कुछ लाभ हुआ था। वह बात बहुत पुरानी पड़ चुकी थी। अब तो हम लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक उठा रहे थे।

टेनेरी ही के कारण इरा का सर्वनाश हुआ। गाँव के लोग तो, लड़कों के चाहने पर भी ऐसा बात नहीं कर सकते थे। टेनेरी ने ही दो लड़कों को परेशान करके गाँव से हाँक दिया और एक को निगल गयी!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हमें ही क्या, टेनेरी ने कितनों को बर्बाद कर दिया; जानकी का पूरा परिवार, चाकली, कन्हाई, कुन्ती....।

परन्तु टेनेरी को ही क्या दोष दूँ। टेनेरी होती या न होती, जमीन तो जब चाहे हमारे हाथ से छीन ली जा सकती थी। हमारी अपनी धरती तो थी नहीं। मेरे पति के बाप की भी धरती अपनी नहीं थी। टेनेरी ने चाहे जो कुछ किया हो, पर बाढ़ और सूखा पड़कर हमारी फसलों को बर्बाद हो जाने में दोष उसका नहीं था। धरती और आकाश की दया पर जीवित रहने वालों पर जो न बीत जाये सो थोड़ा। इसे किसान ही जानता है। वह चार दिन खाता है तो चार दिन उपासा भी रहता है। श्रम करना किसान के अपने वश की बात है, परन्तु उसके श्रम का फल भगवान् के ही हाथ रहता है।

जब तक धरती पर बैठे थे, तब तक आशा भी थी, परन्तु अब क्या था। कोठरी के भीतर जाकर देखा, भीतों से कई जगह गारा गिर गया था। नारियल के पत्तों का छप्पर भी जगह-जगह से गिर रहा था। नीचे धरती गोबर से लीपी हुई थी। यह घर मेरे पति ने अपने ही हाथों मेरे लिए बनाया था। यहीं मैं दुलहन बनकर आयी थी। आज यही घर हमसे छिन रहा था; क्योंकि घर की धरती हमारी नहीं थी। हमारे जीवन का आधार धरती भी छिन गयी थी। हमें यहाँ से हाँक देनेवाले नहीं जानते, हम पर क्या बीतेगी, वे लोग क्याकर रहे हैं?

साँझ को सिलवा अस्पताल से लौटा तो उसे पिता ने विपदा की बात बतायी। लड़के ने क्षोभ, क्रोध अथवा दुःख नहीं प्रकट किया, चुप रह गया। अपनी पुस्तकें उसने स्वयं बनाये हुए लकड़ी के बक्से में रख दीं और मौन बैठा रहा। दिये का टिमटिमाता प्रकाश उसके लड़काई के गंभीर चेहरे पर नाच रहा था। मेरे मन में ख्याल आया, इसे धरती छिन जाने का क्या गम। यह तो पहले ही उसे छोड़ चुका था। फिर ख्याल आया, उसका तो स्वभाव ही गंभीर है। खूब सोचे-समझे बिना वह बोलता नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसके पिता ने लड़के की ओर घूमकर देखा। उसे यह मौन भारी हो रहा था।

"बस पन्द्रह दिन हैं, फिर तो यह जगह छोड़नी होगी"—मैं बोली।

"यह तो बड़ा जुल्म है"—सिलवा तीखे, परन्तु गंभीर स्वर में बोला। उसकी आँखों में भी क्रोध दिखाई दिया।

"यही बहुत समझो कि पन्द्रह दिन का समय दे रहे हैं। दूसरे लोगों को तो एकदम ही धक्का दे दिया।"

सिलवा बाप की ओर घूम गया और बोला—"हम कैसे मान जायँ? तुमने कुछ कहा नहीं?"

"कहा क्यों नहीं बेटा, पर मेरे कहने से क्या होता है, मेरे वश में क्या है।"

"यह कौन न्याय है? यह तो जुल्म है!"—सिलवा बोला।

"कानून ही ऐसा है भाई"—ये निराशा के स्वर में बोले, "कोई क्या कर सकता है? रो-धोकर चुप हो जायेंगे।"

"जाओगे कहाँ?"

"और कहाँ जायेंगे भैया। मुर्गन शहर में नौकरी कर रहा है वहीं चले जायेंगे"—उसके बाप बोले, "लड़का मा-बाप को जगह देगा ही।

"शहर का तो बड़ा लम्बा सफर है। तुम इतनी दूर की यात्रा कैसे कर पाओगे?"

"जैसे भी होगा, करेंगे"—इन्होंने सिलवा को उत्तर दिया, "खेती छोड़कर और करेंगे क्या? दूसरे किसी काम लायक हैं भी तो नहीं। इस उमर में खेत और जमीन हमें कौन जमींदार देगा? हमसे लगान पाने का भरोसा कौन करेगा?"

इस उमर तक बहुत कुछ देख-सुन लिया था, फिर भी इनकी बातें कलेजे में गड़ गयीं। उन्हें सान्त्वाना देने के लिए मैं बोली—"ऐसे दिल छोटा क्यों करते हो? यह सब मुझसे नहीं सुना जाता।"

"सच ही तो कह रहा हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"यह सब सच रहने दो"---मैं रो पड़ी, "मुझे यह सच नहीं सुनना है।"

"तुझे यह सब बुरा तो लगेगा ही।" इन्होंने कहा, "पर जो होनी है उससे आँख बन्द कर लेंगे तो क्या होगा। तू क्या नहीं जानती!"

मैं हाथों से मुँह ढक सिर घुटनों पर रख रोने लगी। इन्होंने अपना हाथ पीठ पर रख दिया और सहलाने लगे। जानती थी, इन्हें अपनी नहीं, मेरी ही चिन्ता थी। मुझे भी अपनी क्या, इन्हीं की चिन्ता थी। हम लोग अकेले-अकेले रहे होते तो शायद इतनी चिन्ता किसी को न होती। परन्तु इस दुःख को अकेले अकेले झेल भी कैसे पाते? मेरा मस्तिष्क कटी हुई पतंग की भांति आकाश में इधर-उधर उड़ता और डूबता जा रहा था।

सिलवा का स्वर कानों में पड़ा तो सहारा सा जान पड़ा। आँखें उठाकर उसकी ओर देखा। आवेश के कारण उसके माथे पर पसीना आ रहा था। उत्तेजना के कारण मुँह से बात टूट कर निकल रही थी। वह अपने पिता को सम्बोधन कर रहा था। मुझे तो वह कुछ पगली ही समझता था। गलत भी क्या समझता था?

"खेती का काम क्या मैं नहीं कर सकता"—सिलवा कह रहा था, "मैं जवान हूँ, बदन में ताकत है... हम दूसरी जगह खेत ले लेंगे, जैसे पहले खेती करते थे अब भी करेंगे.....।"

उसके बाप की आँखें चमक गयीं, मानो आशा की लौ जल उठी हो। मुझे सिहरन सी अनुभव हुई। "यह तू क्या कह रहा है"--मैं बोल उठी, "तेरे बाप नहीं मानेंगे।" उसके बाप ने भी इनकार में सिर हिला दिया--

"नहीं बेटा, यह न होगा"--इन्होंने दृढ़ता से कहा, "तू अपनी जिन्दगी क्यों बर्बाद करेगा! ऐसा हम नहीं मानेंगे। तेरी मा भी नहीं मानेगी।" यह मेरी ओर देखकर मुसकिरा दिये।

"नहीं-नहीं ऐसा ही करेंगे"—सिलवा ने आग्रह किया, "बहन और शक्रत्राणी, हम लोग साथ-साथ चलेंगे। वे लोग भी यहाँ क्या करेंगे?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम समझ रहे थे कि इरा नींद में है। "नहीं भय्या, मुझे रहने दो"—इरा बोली और उठकर हमारे पास आ बैठा। "तुम पर बोझ क्यों डालूँ। यहाँ लोग-बाग मुझे चीन्हते-पहचानते हैं, नयी जगह नया झंझट होगा।"

"क्या कहती है तू बेटा"—उसके बाप ने कहा "हम बुड्ढे लोग जा रहे हैं। तेरी तो बेटी, अभी उमर ही क्या है? तुझे नयी जगह से क्या डर है?"

"इस लड़के को कहाँ ले जाऊँगी?"—इरा बोली।

"तू कहाँ रहे?"—मैंने पूछा, "कहाँ से खायेगी?"

"नहीं जाना चाहती तो रहने दो"—सिलवा बोला, "मेरे साथ रहेगी। मैं सब सँभाल लूँगा।"

"और बच्चा?"

"बच्चा और कहाँ जायेगा? वह भी रहेगा।"

"यह कैसे सरेगा"—उसके बाप ने पूछा "तुझे मिलता ही क्या है? उसमें गुजारा कैसे होगा?"

"सब हो जायेगा"—सिलवा दाँतों से होंठ काट कर बोला, "क्या कहूँ बड़ी शरम मालूम होती है। मा-बाप का कुछ कर नहीं सका। परन्तु आप लोगों को कष्ट नहीं होने दूँगा।"

बहुत रात बीत गयी था। कुछ देर इरा को समझाते रहे कि उसका गाँव में रह जाना ठीक नहीं। सिलवा इतना बोझ सँभाल नहीं पायेगा और अकेले वह निबाह नहीं पायेगी। थक कर सो गये। फिर भी कितनी बार यही बात होती रही। परन्तु परिणाम यही होता कि हमें जाना होगा—लड़के, लड़की और नाती को छोड़कर जाना होगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[२४]

घर का सब सामान मैंने समेट लिया। अपनी और इरा के बाप की चटाइयाँ खूंटी से उतार कर धरती पर बिछा दीं और सामान को चटाइयों में लपेट लिया। एक सेर चावल था, नमक-मिर्च और हल्दी भी रख ली। अपना और इनका काठ के प्याले रख लिये। सामान बीच में रख चटाइयों को खूब कस कर लपेट लिया और उनके सिरे रस्सी से बाँध दिये कि कुछ इधर-उधर न गिर जाय। दहेज में मैं रसोई के जो बर्तन लाई थी उनमें से अधिकाँश लगान पूरा करने के लिए बिक चुके थे। शेष में से दो बर्तन मैंने इरा और सिलवा के लिए छोड़ दिये और दो साथ रख लिये। चक्की, ओखली और मूसल का बोझ साथ कैसे ले जाती। सोचा मुर्गन की बहू के यहाँ यह सब होगा ही। मन में उदासी सी अनुभव हुई कि मेरे राँधने-पकाने के दिन तो अब गये। कैसे मैं उत्साह और चिन्ता से ईंधन बटोर कर चूल्हा जलाती थी। हंडिया के नीचे फूंक-फूंक कर धुएं से कैसे खांसी आने लगती और आँखों से पानी बह जाता। अब उस कष्ट की स्मृति मधुर लग रही थी। हम लोग बैलगाड़ी से जा रहे थे। दो दिन-रात की यात्रा थी। यात्रा में तो राँधना-पकाना था ही, इसलिए मैंने कुछ उपले और फूंकनी भी साथ ले ली। अपनी सब जमा पूंजी मैंने कोठार में से खोद कर निकाल ली। तीन रुपये हमारे अपने थे, तीन सिलवा ने अपनी कमाई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से दिये थे, दस रुपये का एक नोट डाक्टर साहब ने हमारी सहायता के लिए भेज दिया था। यह सब रुपया लेकर हमने सावधानी से कमर में बाँध लिया और यात्रा के लिए तैयार हो गये।

अभी पौ फट रही थी, हल्का-हल्का कुहासा वायु में भरा था। बैलों के गले में बंधी घंटियाँ सुनाई दीं। समझा कि बैलगाड़ी आ गयी है। गाड़ी में कमाये हुए चमड़े की गाँठें लदी हुई थीं। हम दो आदमियों के लिए जगह थी। हम लोग गाड़ी में बैठ गये। सिलवा ने हमारा सामान हमें थमा दिया। हम अपनी चीज-वस्तु अपनी गोदी में लेकर बैठ गये। गाड़ी-वाले ने सामान चमड़े की गाँठों पर रख देने को कहा तो हमने संभालकर उसे वहाँ रख दिया।

गाड़ी चलने ही वाली थी। सिलवा समीप खड़ा था। इरा भी शक्रवाणी को उंगली पकड़ाये उसके साथ खड़ी थी। गाड़ीवान ने हाथ की चाबुक बैलों की पीठ पर फटकार कर उन्हें चलने का संकेत किया। बैलों ने जोर लगाया, गाड़ी झटका देकर हिली। लड़कों के बाप ने आशीर्वाद के संकेत से हाथ उठा दिया। बच्चों ने नमस्कार में सिर झुका लिया। गाड़ी चलने लगी, पहिये धरती पर धूल को पीस कर उडाते जा रहे थे। सिलवा और इरा कुछ दूर तक गाड़ी के पीछे चलते रहे। बैल चाल पकड़ने लगे। बच्चे पिछड़ने लगे, बहुत दूर रह गये। गाड़ी और भी तेज हो गयी। हम पीछे की ओर मुंह किये बैठे थे। हमारा छप्पर पीछे दूर छूटता जा रहा था, फिर भी आँखों के सामने था। खेतों की हरियाली धुंधली पड़ती जा रही थी अब छप्पर दूर धब्बे जैसा लगने लगा। तब भी हम आँखों को हाथों से छांह किये उसी ओर देखते रहे। पहिये के प्रत्येक चक्कर हमें दूर लिये जा रहे थे। गाँव अदृश्य हो गया, आँखों के आगे तारे से नाचने लगे। मैंने आँखें मूंद कर सिर इनके कंधे पर टिका दिया। इनका सिर मेरे सिर से आ लगा। हम दोनों को परस्पर का ही सहारा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गाड़ीवान सो गया था, बैल अपनी राह जानते थे और चले जा रहे थे। दोपहर आ गयी तो हम लोग रास्ते के किनारे एक कुएँ के पास ठहर गये। गाड़ीवान ने नींद से जागकर अंगड़ाई ली और हमें सम्बोधन किया—"तुम लोग यहाँ कुछ बना-खा लो", और बैलों को खोल कर पानी पिलाने ले गया। मेरी आँख बैलों की ओर थी। देखा, एक बैल के कंधे पर घाव है। जुए की रगड़ से खाल कट कर घाव बन गया था।

"बैल के तो घाव है" मैं गाड़ीवान से बोली।

"क्या करूँ भैय्या" उसने विवशता में गर्दन हिलाकर उत्तर दिया—"यही दो बैल हैं, इन्हें जोतूं नहीं तो बाल-बच्चों का पेट कैसे भरे?"

हम लोगों ने बनाया-खाया और फिर चल दिये।

धूल से भरी कच्ची सड़क सीधी चली जा रही थी। कहीं-कहीं बड़ या इमली के पेड़ों की ठंडी छांह आ जाती। जख्मी बैल की चाल धीमी पड़ने लगी। गाड़ीवान क्रोध में उसकी पीठ पर चाबुक फटकराने लगा, पर बैल तेज न हो सका। दूसरी भी कई गाड़ियाँ सड़क पर आ-जा रही थीं। हम कई बैलगाड़ियों से आगे निकल गये, कई गाड़ियाँ हमसे आगे निकल गयीं। संध्या समय फिर ठहरे। हम लोग राँधने-खाने में लग गये। आधी रात में गाड़ीवान ने एक लालटेन जलाकर गाड़ी के नीचे बाँध दी। सड़क पर लालटेन का मध्यम प्रकाश आगे बढ़कर जा रहा था और उसके ऊपर गाड़ी जा रही थी। हम लोग गाड़ी में बैठे-बैठे सोते रहे और गाड़ी चलती रही।

गाड़ीवान ने हमें जगाया। शहर की बस्ती आरम्भ हो गयी थी। दोपहर ढल चुकी था। सूर्य की प्रचण्ड किरणों से आग बरस रही थी।

"लो भई यहाँ तक पहुंचाने को था", गाड़ीवान ने इन्हें कंधे से हिलाते हुए कहा। मैंने भी उनका कंधा हिलाकर जगाया और कहा—"उठो न, पहुंच गये।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन्होंने पलकें खोलीं। आँखें नींद से लाल हो रही थीं। "बड़ी गहरी नींद आयी," ये जम्हाई लेते हुए बोले।

"बहुत अबेर हो गयी। यह बैल चल नहीं पाता, नहीं तो सुबह ही पहुंच गये होते।"

गाड़ीवान नीचे कूद आया और बैलों को पानी पिलाने के लिए खोलने लगा।

बैल के कन्धे का घाव बढ़ गया था और अब खून भी बह रहा था।

"यह बैल अब बैठ जायेगा"—गाड़ीवान ने खिन्नता से कहा, "भगवान् जाने कैसे निभेगी, और बैल कैसे खरीद पाऊँगा।"

बैलों को पानी पिलाकर उसने गाड़ी जोत ली। जख्मी बैल झिझका, परन्तु चाबुक की चोट खाकर गाड़ी खींचने लगा। गाड़ी चल दी। गाड़ीवान ने हम लोगों की ओर घूम कर पुकारा"—जय राम जी की भैया।"

"जय राम जी की"—हमलोगों ने भी उत्तर दिया।

कुछ देर हम सामान धरती पर रखे चौराहे पर खड़े रहे। समझ नहीं रहे थे, किस रास्ते जायं। आस-पास कोई नहीं था। इन्होंने चटाई कंधे पर उठा ली और बोले—"कहीं भी चलो तो कोई मिल ही जायेगा।" कुछ दूर उसी राह पर चले गये, पर रास्ते में कोई नहीं दिखाई दिया। मैं मन में सोचने लगी, गाड़ीवाले से ही पूछ लिया होता, शायद वही बता देता। कुछ दूर गये तो दो आदमी सिर पर बोझ उठाये सामने से आते दिखाई दिये।

"कोयलबाजार का रास्ता कौन है भाई ?"—उन्होंने पूछा।

"कोयलबाजार, देखो हम बतायें"—आदमी ने उत्तर दिया और स्मृति को सचेत करने के लिए सिर खुजाने के लिए हाथ उठाया। सिर पर बोझ था, इसलिए हाथ रुक गया।

"नहीं भाई, नहीं मालूम।" उस आदमी ने अपने आदमी को सम्बोधन किया—"तुम्हें मालूम है कोयल बाजार का रास्ता ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"हाँ, सुना तो है। हाँ, याद आ गया। शहर की बगल में बस्ती है। दूर है यहाँ से। रास्ता यही सीधा है।"

"कितनी दूर है ?"

"होगा पन्द्रह मील।" हम लोगों के चेहरे पर चिन्ता देख उसने धीरज बँधाया—"चलते जाओ, कोई सवारी मिल ही जायेगी।"

हम चले जा रहे थे। कई बैलगाड़ियाँ निकल गयीं। एक-दो इक्के भी निकल गये। कोई ठहरा नहीं, किसी में जगह नहीं थी। मेरे कंधे का बोझ हल्का ही था, परन्तु थक जाने के कारण उसे उठाकर चलना दूभर हो रहा था। गर्दन दुखने लगी थी। दोनों हाथों में भी एक-एक बर्तन था। धूप कड़ी थी, पसीना बह रहा था। पसीना पोंछना होता तो बर्तन धरती पर रख कर पसीना पोंछ लेते। इनके सिर पर और भी भारी बोझ था। ये भी ऐसा ही करते। मच्छर और मक्खियाँ भी घेरे हुए थीं, इसलिए धीरे-धीरे ही जा रहे थे।

आगे जाकर सड़क चौड़ी होने लगी और बीच-बीच में सड़कें फटने लगीं। कोई सड़क काटती हुई निकल जाती। मन में दुविधा हो रही थी कि ठीक रास्ते जा रहे हैं या नहीं। अब सड़क पर बहुत से लोग आ-जा रहे थे, पर सभी उतावली में थे। किसी को रोक कर रास्ता पूछ लेने का साहस न होता। आदमी ही नहीं, सवारियाँ भी, बैलगाड़ियाँ, इक्के, मोटरें और बाइसिकलें। इतनी सवारियाँ हमने कभी नहीं देखी थीं। सड़क पर पहियों की खड़खड़ाहट, घंटियों, गाड़ीवालों की पुकारों और मोटरों के भोंपू के शोर से कही हुई बात कान में नहीं पड़ पाती। कई बार बाइसिकल का धक्का लगते-लगते बचे। एक इक्के के नीचे आते-आते रह गये। हमारा दिल धड़क रहा था तो इक्के वाले ने क्रोध में हमें भी गालियाँ दीं और चाबुक उठाकर मारने की भी धमकी दी। भीड़ इकट्ठी हो गयी। लोग हमें विस्मय से देखने लगे और फिर चल दिये।

हम लोग शहर के चौक में पहुँच गये। पूछा तो पता लगा कि कोयल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बाजार अभी छः मील दूर था। मैंने देखा यह बहुत थक गये थे। गर्मी और बाजार के शोर से भी घबरा गये थे। चलते-चलते बार-बार लड़खड़ा रहे थे।

"कुछ देर बैठकर सुस्ता लें"—मैं बोली।

एक गली पर भीड़ जरा कम थी। हम लोग अपनी चीज-वस्तु किनारे पर रख कर सुस्ताने के लिए बैठ गये। किसी ने कोई रोक-टोक नहीं की। राह में केले के फल खरीद लिये थे। चार बजे थे। सुबह से कुछ खाया नहीं था। मैंने दो केले इन्हें दे दिये और एक छीलकर खाने लगी। झुटपुटा अँधेरा हो गया था। भीड़ छट रही थी, शोर भी कम होने लगा था। सड़क पर रोशनियाँ जल गयीं और दुकानों में भी खूब उजला प्रकाश हो गया। जहाँ हम बैठे थे वहाँ अँधेरा ही था। गली के दोनों ओर ऊँचे मकान होने के कारण वहाँ अँधेरा और भी घना था।

इस समय उठकर कोयलबाजार खोजने के लिए सामर्थ्य शरीर में नहीं थी। अँधेरे में नींद आ गयी। नींद खुली तो तारों की ओर देख कर जाना कि आधी रात ढल गयी। चल दें तो ठीक है, नहीं तो साँझ तक भी बेटे का घर ढूंढ़ नहीं पायेंगे।

ये भी उठ बैठे थे, पर उठ कर चल देने का साहस नहीं हो रहा था।

समीप के दरवाजे में एक बूढ़ा सोया हुआ था। वह भी उठ बैठा और आकर बोला—

"कहाँ जाओगे भैया इतनी रात में?"

"कोयलबाजार जायेंगे, हमारा लड़का वहाँ रहता है।"

"कोयलबाजार बहुत दूर है। तुम भी थके होगे।"

"अब सुस्ता लिये। देर हो रही है, पहुँचना भी तो है।"

"इस समय चल न सको तो मंदिर में जाकर सुस्ता लो और कुछ बना-खा लो। मंदिर पड़ोस में ही है"। उसने मंदिर की ओर इशारा कर दिया। मंदिर समीप ही दिखाई दे रहा था। मंदिर के ऊपर ज्योति जल रही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थी। (दक्षिण में मंदिरों के शिखरों पर दिन रात ज्योति जलती रहती है।)

विश्राम के लिए सुविधा का स्थान पा जाने से धीरज बँधा। हम-लोग अपना लटा-पटा समेट कर मंदिर की ओर चल दिये।

मंदिर की ओर उस समय भी बहुत से लोग चले जा रहे थे। प्रायः बूढ़े और अपाहिज। वे लोग आपस में परिचित होंगे। चलते-चलते आपस में बोलते-चालते जा रहे थे। हमारे सिरों पर सामान देख कर वे जान गये कि हम परदेशी हैं, परन्तु उन्होंने हमें दुतकारा नहीं। एक दो ने पूछ भी लिया, "कहो, क्या मंदिर जा रहे हो?"

"हाँ, मंदिर में रात काट लेंगे।"

"क्या शहर में हो रहोगे?"

"हाँ भाई, हमारा लड़का मुर्गन यहाँ शहर में है, उसी के यहाँ आये हैं। नाम सुना होगा?"

"नहीं भाई, नहीं सुना"—भले आदमी ने सिर हिला कर इनकार किया, "बड़ा शहर है, यहाँ कौन किसको जानता है।"

मंदिर के आस-पास दुकानें अब भी खुली थीं। दुकानों पर गैस जल रहे थे और दुकानदार बोल-बोल कर गाहकों को लुभा रहे थे, पर खरीदने वाले नहीं थे। एक दुकान पर पुलाव का बहुत बड़ा ढेर लगा था। पुलाव में घी चमक रहा था और तली हुई लाल मिर्चें और प्याज के लच्छे सजे हुए थे। महक दूर-दूर तक फैल रही थी। पेट में अंतड़ियाँ उछलने लगीं और सिर घूमने लगा। फिर अंतड़ियों के इस निष्फल विक्षोभ से उबकाई सी अनुभव होने लगी। इन्होंने मेरा कंधा पकड़ कर पीठ सहला कर सँभाला; परन्तु उनकी अपनी भी दशा वैसी ही हो रही थी।

हमलोग रोज की आने जानेवाली भीड़ के साथ आँगन में पहुँचे, फिर ड्योढ़ी में चले गये और तब एक खूब बड़ी मेहराबदार छत के नीचे। भीतर एक आसन पर भगवान् की मूर्ति थी। मूर्ति का नया शृंगार किया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गया था। भगवान् के चरणों में फूल, पान-सुपारी और मिठाइयों का ढेर लगा था।

मेरे समीप बैठी बुढ़िया ने मेरा कंधा छूकर कहा—

"सब प्रसाद गरीबों को बँटेगा, पूजा हो जाय। आज बहुत है"—बुढ़िया होंठ चाट रही थी।

कुछ समय पश्चात् दो पुजारी आये। एक जल का कलसा लिये था और दूसरा थाली में पूजा का अर्घ्य। घंटे-घड़ियाल बजने लगे, पुजारी मंत्रों का पाठ करने लगे। सब लोग हाँथ बाँध कर आँखें मूँद कर खड़े हो गये। मेरी मुंदी आँखें जल रही थीं। मुंदी आँखों के सम्मुख मेरा बेटा और इरा दिखाई दे रही थी। अपने खेत और छप्पर दिखाई दे रहे थे। बुढ़िया दादी का पोपला मुंह दिखाई दिया, डाक्टर साहब का त्योरियों से भरा माथा दिखाई दिया और शक्रत्राणी का भयभीत, श्वेत मुख दिखाई दिया। मैं भगवान् की मूर्ति का ध्यान करने का यत्न करने लगी। जान पड़ा, भगवान् दया से मेरी ओर देख रहे हैं।

ध्यान पूजा में डूब गया तो घंटे-घड़ियाल भी नीरव हो गये। मुझे स्वयं अपनी प्रार्थना ही सुनाई देने लगी। मेरी प्रार्थना धूप के धुएँ की तरह मेरे हृदय से उठकर भगवान् की ओर जा रही थी। मेरी आँखें खुलीं तो फिर पूजा के घंटे-घड़ियाल और मंत्रों का कोलाहल था। एक पुजारी चरणामृत के छींटे भी ऊपर फेंक रहा था। दूसरा पुजारी प्रसाद उठाकर तीसरे आदमी के हाथों में दे रहा था। सहसा मंदिर के पीतल जड़े कपाट बंद हो गये। भीड़ आँगन की ओर चल दी।

"प्रसाद आँगन में बँटेगा"—बुढ़िया ने बताया। "जल्दी चल, नहीं तो कुछ नहीं मिलेगा।"

कोलाहल मच गया। भीड़ एक-दूसरे को धकेलती आँगन की ओर भाग रही थी। सब ओर आगे बढ़ जाने की प्रतिद्वंद्विता दिखाई दे रही थी। मैं भीड़ के बीचोबीच, परन्तु ये पीछे रह गये थे। भीड़ के धक्के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सह लेना इनके वश का नहीं था। सोचा—मैं कह दूँगी, मेरे साथ दो आदमी हैं और इनके लिए भी प्रसाद ले लूँगी। तभी दो आदमी भाप उड़ते भात से भरी परात और दाल का हंडा लेकर आये। भात और दाल की मोहक मटक से मूर्छना छा गयी।

भीड़ में से एक-एक आदमी आगे बढ़ने लगा। पुजारी केले के पत्ते पर भात रख और दोने में दाल भर कर देने लगे। मेरी भी बारी आयी। परात में भात बहुत थोड़ा रह गया था। मैंने पंजों के बल उचक कर देखना चाहा कि कुछ मिलेगा या नहीं।

"पीछे रह, क्या परात को ही निगल जायेगी?"—पुजारी ने मुझे धमका दिया। मैं पीछे हट गयी।

पुजारी ने पत्ते में भात रख कर मेरे हाथ में दिया और दाल का दोना उस पर रख दिया।

मैंने प्रार्थना की—महाराज, "मेरा आदमी भी है, उसके लिए भी दे दो।"

पुजारी ने विस्मय से आँखें फाड़कर मेरी ओर देखा और बोला—"औरत पागल है। क्या दो बार लेगी?"

"ऐसी लालची है, मन नहीं भरा। दान लेने में भी धोखा करती है?"

"नहीं महाराज, मेरा आदमी भी यहाँ है, उसके लिए माँग रही हूँ"—मैं गिड़गिड़ाकर बोली।

"तेरा आदमी है तो अपनी बारी से अपने आप ले लेगा। हमें मूर्ख बनाती है।" दूसरे पुजारी ने धमकाया—"चल हट।"

"आगे से हट! रास्ता छोड़! "भीड़ में से बहुत से लोग पुकारने लगे। मैं भात लेकर एक ओर हट गयी। दूसरे लोग भात लेकर बैठ कर खा रहे थे। मैं भी उन्हीं में जा बैठी। पुजारी की बात से मैं उदास हो गयी थी।

"कभी-कभी यह लोग बड़ी कड़ी बात कह देते हैं, थक भी तो जाते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होंगे"—बुढ़िया ने समीप आकर कहा, "इन लोगों की बात का क्या बुरा मानना।"

बहुत से लोग बुढ़िया का समर्थन करने लगे, परन्तु एक आदमी ने विरोध किया—

"ठीक तो कहते हैं ये लोग, सबको अपनी अपनी बारी से प्रसाद लेना चाहिए। कोई दो बार क्यों ले?" आस-पास बैठे लोग उसका भी समर्थन करने लगे। मुझे अपनी सफाई देना आवश्यक जान पड़ा। मैं बोली, "मैंने झूठ थोड़े ही कहा था। मैं अपने आदमी के लिए माँग रही थी।" ये मेरी ओर खाली हाथ चले आ रहे थे। इनकी ओर संकेत कर मैंने कहा—"देख लो, इन्होंने प्रसाद कहाँ पाया है?"

हम दोनों ने एक ही पत्तल में बाँट कर खा लिया। पेट पूरा नहीं भरा, फिर भी अच्छा लगा। पेट में अन्न जाने से सिर का चकराना दूर हो गया, शांति अनुभव होने लगी। भात खाकर हम लोगों ने पत्ते और दोने एक ओर फेंक दिये। प्रतीक्षा में समीप खड़ी बकरियाँ पत्तों को चबा चबा कर खाने लगीं। उनकी आँखों से भी कृतज्ञता टपक रही थी को हम लोगों ने नल से बहते पानी में हाथ और मुंह धो लिये। अब सो जाने के लिए स्थान की बात सोचने लगे तो अपने सामान की याद आयी। मन में हल्की सी धड़कन का अनुभव हुआ।

हम लोग अपने सामान ड्योढ़ी में बने एक पत्थर के खंभे से टिकाकर रख आये थे। लौट कर देखा तो सामान नहीं था। दिल धड़कने लगा, मन को समझाया कि हम ही भूल गये होंगे। खंभे तो सब एक ही जैसे हैं। सामान किसी दूसरे ही खंभे के साथ टिकाया होगा। सकड़ों खंभे थे। एक के पश्चात् एक सभी खंभों का चक्कर लगा लिया और निराश हो गये।

तीन-चार आदमी हमें अपना सामान खोजते देखकर आ गये। उन्हें देख कर कुछ और लोग भी आ जुटे। लोग परामर्श देने लगे—"ठीक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

याद है कि सामान इसी बारादरी में रखा था? ऐसी ही बड़ी बारादरी पश्चिम की ओर दूसरी भी है।"

"यहीं रखा था"—हम बोले "उधर तो हम गये ही नहीं।"

"वहाँ कैसे रख सकते थे सामान ये लोग? वह बारादरी तो रात में बंद रहती है।"

"सामान की रखवाली के लिए कौन था?"

"कोई भी नहीं, ऐसे ही छोड़ गये थे।"

"ऐसे ही छोड़ गये थे? तो तुम्हें सामान की परवाह ही नहीं थी। जानते नहीं, कैसा समय है। तमाम चोर उचक्के भर गये हैं।"

"मंदिर में भी चोर? ऐसा तो नहीं सोचा था।"

"मंदिर में क्या चोर नहीं आ सकते? हजारों तरह के लोग आते हैं; किसी के मन की बात कोई कैसे जान सकता है?'

"हम तो लुट गये" इन्होंने निराशा से कहा।

अब और खोजने फिरने से थकावट के सिवा और क्या मिलता। निराश होकर पत्थर के फर्श पर लेट रहे।

"चलो सामान चोरी भी गया तो क्या, अपना पैसा तो अपने पास है। चटाई और भांड़े फिर खरीद लेंगे।"

"चुप रहो"—मैंने धीमे से कहा और अपनी कमर पर टटोल कर देखा। कपड़े में लिपटे पैसों की कड़ाई का अनुभव कर सान्त्वना पायी।

ये तो निश्चिंत होकर सो गये। मुझे इनकी बेपरवाही पर क्रोध आने लगा—अब भांड़े बर्तन के लिए भी बहू का मुंह देखूँगी। भात रांधने की हांडी तक नहीं है। मानो भिखमंगे हों। सोचा, बाजार से बर्तन खरीद ही लें। बहू के यहाँ खाली हाथ जाने में बड़ी लाज लगेगी। नींद आने लगी, परन्तु रह-रह कर पूजा की घंटियाँ और नगाड़े बज उठते और नींद टूट जाती।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुझे किसी का हाथ अपने शरीर पर अनुभव हुआ। चौंक कर देखा, इनका हाथ मेरे ऊपर आ गया था। फिर सो गयी, फिर जान पड़ा कि मेरे मुख पर किसी की उँगलियाँ चल रही हैं। मैंने अपने हाथ से हटाया देखा तो कुछ नहीं था। नयी जगह में नींद नहीं आ रही थी या चीज-वस्तु चली जाने की व्याकुलता थी। मैं सो नहीं सकी। उठकर दीवार का सहारा लेकर बैठ गयी। मैं टिमटिमाती लालटेन के प्रकाश में इधर-उधर देखती रही। आँखें धुंधले प्रकाश से अभ्यस्त होने लगीं। खंभों और दीवारों पर बनी मूर्तियाँ दिखाई देने लगीं। जान पड़ता था कि साँस लेने से देवियों के स्तन ऊपर-नीचे हो रहे हैं और देवताओं के हाथ-पैर भी हिल रहे हैं। यही देखते-देखते घने अँधकार में प्रभात का धौलापन आने लगा। सूर्य की किरणों में सब कुछ स्पष्ट हो गया और देवी देवता निश्चल हो गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[२५]

सूर्य की पहली किरण के साथ ही इनकी नींद खुल जाती है। यह भी आँख मल कर उठ बैठे।

"खूब सो लिये"—मैंने पूछा। खुद नींद न आ सकने की ईर्ष्या भी थी, परन्तु इन्हें स्वस्थ देख कर अच्छा भी लगा।

"हाँ, बहुत थक गया था," ये बोले, "तू तो जान पड़ता है सोयी नहीं।"

"हाँ नींद आयी ही नहीं।"

"तू परेशान बहुत है ना।" उनकी चिन्ता देख कर मुझे लज्जा सी लगी। उन्होंने समझाया—"चल लड़के के यहाँ पहुँच कर ही तेरा मन शांत होगा। अब चल ही दें।"

सब ओर सोये हुए लोगों, अपाहिजों की बैसाखियों, लाठियों और चिथड़ों से बचते हुए हम नल पर गये और हाथ-मुंह धो मंदिर से बाहर निकले।

बाजार में तड़के ही दुकानें खुल गयी थीं। हलवाइयों की दुकानों पर कड़ाहियों में घी और तेल में पूरियाँ और दूसरी चीजें तले जाने की कड़-कड़ाहट हो रही थी और सुगन्ध फैल रही थी। हलवाई के यहाँ बड़े थाल में सजी ताजी पूड़ी देख कर इनकी आँखें ललचा गयीं।

"थोड़ा ले लें, भूख भी तो लगी है"—इन्होंने कहा।

मन तो मेरा भी खाने को हुआ, परन्तु पैसा खर्च होने से संकोच लग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहा था। पास में पैसा कम था। कोई भी जरूरत पड़ सकती थी। भांड़े भी खरीदने थे, परन्तु इनकार करते न बना। दाम निकालने के लिए कमर टटोली। पैसे गायब थे।

मैंनें घबरा कर चोली में देखा, फिर कमर टटोली, साड़ी की सब सिलवटें देख डालीं, परन्तु पैसे नहीं थे।

"मंदिर में कमर से फर्श पर गिर गये होंगे", इन्होंने कहा। कोई आशा नहीं थी, फिर भी हम मंदिर में ढूंढ़ने के लिए लौट आये। फर्श पर कहीं कुछ नहीं था। लोगों ने हमें लौटते देखा तो हंस कर कहने लगे—"प्रसाद, बस साँझ को ही बंटता है, दिन भर नहीं बंटता रहता। हमारी चिन्ता देखकर वे लोग चिन्ता का कारण पूछने लगे। हमारी विपदा सुनकर उनकी आँखों और चेहरों पर सहानुभूति दिखाई दी। परन्तु वह सहानुभूति व्यावहारिक उपचार मात्र था। वे हमारी व्यथा का अनुमान क्या करते। कुछ लोगों के कटाक्ष में परिहास भी था। उनकी दृष्टि में हम बेपरवाह देहाती थे। क्रोध और निराशा में मैं कह बैठी—"परवाह तो कम नहीं की, पर ऐसे चोरों से क्या बस चले।" कुछ लोगों ने सहानुभति में समर्थन किया—हाँ भई इतने चोर और पाकेटमार हो गये हैं कि बचना मुश्किल है।

अब शरीर के कपड़ों के सिवा पास कुछ न था। इसलिए संयम से दुकानों से निगाहें बचाये हम बाजार से चल दिये।

बाजार में लोगों और सवारियों की भीड़ में से हम सहमते हुए चले जा रहे थे। रास्ता पूछने का भी साहस करना पड़ता। पूछने पर कोई बिना उत्तर दिये ही चल देता; कोई सहायता करने के लिए रास्ता बताता तो उल्टा ही बता देता। हम उनकी बात ही न समझ पाते। पूछा रास्ता भी हम भूल जाते। याद न रहता कि तीसरे मोड़ पर मुड़ने के लिए बताया था या दूसरे। शहर के लोग हमारी बात न समझ पाते और उनकी बात हमारे पल्ले न पड़ पाती।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चलते-चलते दोपहर हो गयी। हम सुस्ताने के लिए सड़क के किनारे बैठ गये। सड़क पर बहुत से लड़के खेल रहे थे। वे लोग आती-जाती मोटरों और गाड़ियों के बीच से फुर्ती से इधर-उधर निकल जाते। देख कर अचम्भा होता था। वे चतुर थे और खेल भी रहे थे, परन्तु उनके शरीर देखकर लगता था कि भरपेट अन्न इनके पेट में कभी ही गया होगा। पसलियाँ निकली हुई और खाली हवा से भरे पेट घड़े की तरह फूले हुए थे। शरीर धूल और सड़क की गन्दगी से सने हुए थे। शरीर पर बहते हुए फोड़े और घाव की पीड़ा की या तो उन्हें चिन्ता नहीं थी या उन्हें अभ्यास हो गया था। चटकती धूप में बिल्कुल नंगे। इसकी भी उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। इतने में एक खोंचेवाला अपने खोंचे पर बेसन के सेव का एक ऊंचा ढेर सिर पर उठाये और हाथ में थमी लकड़ी को कौओं को डरने के लिए हिलाते हुए सड़क पर से गुजरा। उसकी अपनी लकड़ी से ही कुछ सेव सड़क पर गिर पड़े। लड़के खेल भूल गये और भूखे कुत्तों की तरह सेवों पर टूट पड़े। मुट्ठी भर सेव उनके पैरों तले कुचल कर धूल में मिल गये। वे क्रोध में एक दूसरे का शरीर नोचने लगे। तभी भले ढंग के कपड़े पहने एक अमीर जान पड़नेवाला आदमी सड़क पर दिखाई दिया। लड़के लड़ाई भूल उसके सामने हाथ पसार कर करुण स्वर में भीख माँगने लगे।

"लड़के का पता न लगा तो कहीं हमें भी भीख न माँगनी पड़े" —इन्होंने कहा, "राम जाने भाग में क्या बदा है।"

"ऐसा क्यों कहते हो", इनके स्वर की निराशा से डर कर मैंने कहा—"आओ अब चलें।"

"इन लड़कों से राह पूछ लें"—इन्होंने कहा, "ये जानते होंगे।" इन्होंने लड़कों को बुला कर पूछा, "बेटा, कोयलबाजार किधर है ?"

"कौन सा कोयलबाजार ? तीन कोयलबाजार हैं।"

"तीन कोयलबाजार"—इन्होंने घबराकर कहा, "तब तो हम ढूंढ़ चुके।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"तुम्हें किसके यहाँ है ?"—जाना एक लड़का बोला, "नाम बताओ, हम सबको जानते हैं।

"हाँ भैया, हमारे लड़के का नाम मुर्गन है। वह डाक्टर बिरला के यहाँ काम करता है।

"मुर्गन ! हम नहीं जानते"—लड़के ने उत्तर दिया—"बिरला डाक्टर को सब जानते हैं। तुम चार पैसे दो तो तुम्हें पहुँचा आयें।"

"बेटा पैसा, एक पैसा भी नहीं है।

लड़का चुप रह गया और सोचकर बोला—"अच्छा जब तुम्हें भगवान् देगा तब देना।"

"बेटा, तुम्हें पहचानूंगा कैसे ?"

"मेरा नाम पूली है। मैं इन सब लड़कों का मुखिया हूँ, मुझे बिरला भी कहते हैं।"

"बहुत अच्छा बेटा, जरूर देंगे," ये बोले। लड़के की साहस भरी गुस्ताखी प्यारी लग रही थी।

लड़के ने घूम कर अधिकार के स्वर में दूसरे लड़कों से कुछ कहा और वे सब चले गये। हमें अपने पीछे आने के लिए कह कर उसने चेतावनी दी—"देखो, साथ-साथ चले आओ, नहीं तो रास्ता भूल जाओगे।" हमारे अर्जुन का लड़का इसी उम्र का होता। वह हमें राह दिखाते हुए ले चला। मैंने देखा, उसके हाथ में उँगलियाँ नहीं थीं, केवल ठूंठ थे। नाखून और उँगलियाँ रोग से गल कर झड़ गयी थीं।

हम लोग लड़के के पीछे चले जा रहे थे। लड़का तेजी से भाग रहा था, हम लोग हाँफते हुए चले जा रहे थे। लड़का एक गली के सामने रुक गया। नुक्कड़ पर एक गिरजाघर था।

"यह है गली। गिरजाघर के पास यह मकान है।" लड़के ने हमें दिखाया और मुंह मोड़कर फुरती से भाग गया।

मकान पर तो पहुँच गये, परन्तु समझ नहीं पा रहे थे कि मकान के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भीतर कैसे जायँ। मकान मौन खड़ा था। मकान के बाहर लकड़ी की छोटी चारदीवारी थी और एक फाटक। सामने कोई आदमी नहीं था। हम-लोग फाटक से बगीचे में गये और दरवाजे पर जा पहुँचे।

मकान के दरवाजे खिड़कियाँ सब खुले थे। आँगन में दो-तीन आदमी नौकरों के-से सफेद कपड़े पहने दिखाई दिये। हम पर निगाह पड़ते ही उनमें से एक चिल्लाता हुआ मेरी ओर बढ़ आया और चिल्ला उठा--"यहाँ ऐसे भीख नहीं मिलती" और फिर कुछ झिझक कर बोला, "क्या मतलब है तुम्हें?"

"हमारा लड़का यहाँ काम करता है"—मुर्गन के पिता ने उत्तर दिया, "उसका नाम मुर्गन है।"

"नहीं, यहाँ कोई मुर्गन नहीं है।"

"नहीं है, ठीक जानते हो भैया?"

"हाँ, खूब जानते हैं—यहाँ तीन आदमी हैं, मुर्गन कोई नहीं है।"

मुर्गन के पिता ने मुर्गन के हाथ का लिखा कागज निकाल कर उसे दिखाया। पता नहीं, वह कागज पढ़ सका या नहीं, उसे सरसरी नजर से देखकर लौटाते हुए बोला"—होगा, पर मुर्गन अब यहाँ नहीं है।"

मेरे मन में पश्चाताप हुआ। कि चलने से पहले लड़के को पत्र क्यों नहीं लिखा। लिखते क्या, पूरा विश्वास था कि लड़का यहीं होगा। जगह बदलने से पहले जरूर लिखता। एक मोटर-गाड़ी बँगले में आयी। एक आदमी पतलून पहने, चमड़े का काला बैग हाथ में लिये गाड़ी से उतर आया।

"डाक्टर साहब आ गये"—नौकर ने सतर्क होकर कहा, "भाग जाओ यहाँ से।"

हम इतनी दूर चल कर इतना सहकर इतनी बड़ी आशा लिये आये थे कि सहसा लौट न सकें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"तो डाक्टर साहब से ही पूछो"—ये बोले, "डाक्टर साहब को पता होगा।"

कमीज के भीतर मुझे जान पड़ा, मर्द नहीं, औरत थी। मैंने धीमे से इनके कान में कहा—"यह तो औरत है, सँभल कर बात करना।" इन्होंने विस्मय से उस ओर देखा—"पतलून पहने है....."। "यह बात पूरी भी नहीं कर पाये थे, कि डाक्टर ने पूछ लिया—

"तुम कौन हो? क्या मांगता है?"—स्वर बिल्कुल स्त्री का था।

"हुजूर, हमारा बेटा यहाँ काम करता था"—मैं आगे बढ़ कर बोली, "हुजूर, हम उसी के यहाँ आये थे।"

"क्या नाम?"

"मुर्गन।"

"हाँ-हाँ, कैनिंगटन साहब ने भेजा था।"

"हाँ हुजूर"—मैंने भरोसा पाकर उत्तर दिया, "कैनी साहब ने भेजा था। साहब की हम पर बड़ी मेहरबानी है।"

"कैनी साहब कैसा है?"—स्त्री डाक्टर ने पूछा, मानो हमारी बात उसे ूल गयी है।

"हम कैनी साहब से बहुत दिन से नहीं मिला।"

"अच्छे हैं हुजूर"—मैंने उत्तर दिया, "अस्पताल बना रहे हैं, हमारा छोटा लड़का उनके पास है।"

औरत ने मेरी ओर ध्यान से देखा, मानो अभी और पूछना चाहती हो परन्तु सोच कर बोली, "तुम्हारा लड़का का हाल हम नहीं जानता। वह दो साल पहले इधर से चला गया।"

आशा का जो सूत्र दिखायी दिया था, वहसहसा छिन्न-भिन्न हो गया—लड़का कहाँ चला गया, हम लोगों को कुछ पता भी नहीं दिया। चुपचाप खड़े रह गये। मैंने पूछा—"हुजूर, क्यों चला गया, उससे कुछ कसूर हुआ?....।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"नहीं-नहीं, ऐसा बात नहीं। अच्छा आदमी था। उसको दूसरी जगह ज्यादा तनखाह मिला।"

"हुजूर की मेहरबानी है"—डाक्टर को बात सुन कर फिर साहस हुआ। गले में जैसे कुछ भर आया। अवरोध निगल कर मैंने प्रार्थना की—"हुजूर, कुछ खबर मिल सकती है? लड़का ही हमारा सहारा है। उसका पता कहाँ मिलेगा?"

"हम ठीक नहीं जानता"—डाक्टर की आंखों में करुणा दिखायी दी।

"हम सुना है कि कलक्टर साहब का नौकरी करता है। कलक्टर साहब चामुण्डी में रहता है। बहुत बड़ा मकान है, सब जानता है।"

हम लोग फाटक की ओर लौटने लगे।

"तुम बहुत थका है," "पीछे से स्त्री को पुकार सुनाई दी। और उसने पूछा—"तुम खाना खाया है?"

"हुजूर, मंदिर में प्रसाद पाया था"—आँखें झुका कर मैंने उत्तर दिया।

"वह तो बहुत देर हो गया"—स्त्री बोली, "तुम अभी खाना खा कर जायेगा।" उसने नौकर को पुकार कर कुछ कहा। नौकर मेमसाहब की बात से प्रसन्न नहीं हुआ, परन्तु हमें अपने साथ ले गया।

नौकरों के रहने की जगह बँगले के पीछे कुछ अन्तर पर थी। तीन गोदाम जैसे बड़े-बड़े कमरे एक पंक्ति में थे। दीवालें पक्की ईंट की और फर्श पत्थर का था। कमरों के दरवाजे बहुत बड़े नहीं थे। नौकर का नाम दास था। वह हमें एक कमरे में ले गया। कमरे की पिछली दीवाल में एक ही खिड़की थी, इसलिए बहुत उजाला नहीं था। एक कोने में कुछ धुआँ सा उठ रहा था और एक जवान स्त्री राँधने में लगी जान पड़ती थी।

दास ने स्त्री को सम्बोधन किया—"ये लोग भी खाना खायेंगे। मुर्गन इन्हीं का लड़का है। वह यहाँ पहले काम करता था।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जवान स्त्री मुस्कराती हुई उठ कर हमारी ओर आ गयी। उसकी गोद में गोल-मटोल सा बच्चा दूध पी रहा था। बोली, "बड़े भाग हैं हमारे, आप लोग आये, आओ बैठो। बहुत थके हुए दिखते हो।"

स्त्री की मुस्कान, उसके मीठे बोल ऐसे ही लगे जैसे थके धूप से पसीजते शरीर को ठंडी हवा का झोंका लग जाय या धूप से चटकती धरती पर वर्षा की बौछार पड़ जाय। आधा थकान यों ही मिट गयी। आशा का अवलम्ब दिखायी देने लगा। इनका चेहरा भी हरा हो गया।

"भात तो हो आया है"—स्त्री बोली, "तब तक तुम लोग हाथ-मुंह धो लो। बाहर नल लगा है, ये दिखा देंगे।" उसने दास की ओर संकेत किया।

दास दरवाजे की ओर बढ़ता हुआ बोला, "हाँ-हाँ, मैं भूल ही गया। तुम लोग नहा लो।" दास का स्वर भी बदल गया।

दास हमें नल की ओर ले चला। नल कोठरी से दो-ढाई सौ कदम पर रहा होगा। नल के नीचे सीमेंट का फर्श बना था, परन्तु छींटें उड़-उड़ कर आस-पास कीचड़ हो गया था।

नल से परे पाखाने बने हुए थे। इससे पहले मैं कभी पाखाने में नहीं गयी थी। भीतर जाते हुए घबराहट हुई। पाखाने में दरवाजा नहीं था, छत भी नहीं थी। टीन की चहारदीवारी के एक कोने में एक आदमी के भीतर-बाहर आ-जा सकने भर का दरवाजा छोड़ दिया गया था। नीचे एक नाली थी। मिट्टी भी नहीं थी, जो मैले को ढक ले। पानी भी नहीं था जो बाहर ले जाय। सब खुला पड़ा था। दुर्गन्ध से मेरा सिर फटा जा रहा था। बाहर निकल कर जब तक नहा नहीं लिया, मन ठिकाने नहीं हुआ।

"घबराओ नहीं"—मुर्गन के बाप ने समझाया, "शहरों में लोग ऐसे ही रहते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम लोग लौटे तो वह जवान स्त्री भात में से माँड आ निकाल रही थी। उसकी गोद का बच्चा तो था ही, तीन और बच्चे गये थे।

मेरे प्रश्न के उत्तर में हँस कर बोली—"हाँ अम्मा, मेरे ही हैं।" भात की सुगंध पाते ही जाने भुतने कहाँ से दौड़ आते हैं, नहीं तो दिन भर दिखायी नहीं देते।"

बच्चे मचलकर और खिलखिला कर हँस पड़े। बच्चों की माने चूल्हे पर रखे एक बर्तन में करछी चलाते हुए झाँका और बोली—"बस बन गया।" धुएँ से उसकी आँखों में पानी आ रहा था। गोद का बच्चा भी आँखों में धुआँ लगने से चिल्ला उठा।

"लाओ, लड़के को मेरी गोद में दे दो"—मैं बोली, "तुम काम निवटा लो।"

"लड़की है"—स्त्री ने बच्चे को मेरी गोद में देते हुए कहा—"ऐसे यह कभी नहीं रोती।" लड़की मानो अपने सम्मान का ख्याल करके तुरंत चुप हो गयी।

जवान स्त्री ने हम लोगों और बच्चों के सामने केले के कटे हुए पत्ते बिछा दिये और दाल भात परोसने लगी। खूब उदारता से परोस रही थी, जैसे हम लोग नयी फसल के दिनों में खाया करते। हमारे सामने उसने बच्चों की अपेक्षा अधिक भात रखा।

"तुम बड़ी भली हो, इतना खाने को परोस रही हो"—मैं बोली।

"भात हमें डाक्टर साहब के यहाँ से मिलता है"—स्त्री बोली, "बड़ी मेहरबान हैं। तुम लोगों के लिए भी उन्होंने दाल-चावल भेज दिया।"

सुनकर सान्त्वना हुई, नहीं तो मन में खटक बनी रहती कि अनजान लोगों के सिर बोझ डाला। उनके यहाँ तो खानेवाले भी कम नहीं थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्त्री ने कहा कि एक रात विश्राम किये बिना हमें नहीं जाने देंगे। हमारे लिए उसने दो चटाइयाँ बिछा दीं। इतने दिन की भूख और थकान के बाद भर पेट खाया और सोने के लिए निरापद स्थान मिला तो ऐसी नींद आयी कि सुध नहीं रही।

दूसरे दिन डाकटरनी साहबा को सलाम कर धन्यवाद दे बिदा ली। दास और उसकी घरवाली अपने बच्चों समेत हमें कुछ दूर तक छोड़ने गये। स्त्री और बच्चों के आत्मीयता और प्रसन्नता से पुलकित चेहरे आज भी मेरी स्मृति में उसी भांति सजीव हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[२६]

चामुण्डी पर्वत पर कलक्टर साहब का बँगला ढूँढने में क्या कठिनाई होती। पर्वत मीलों से दिखाई पड़ता था और कलक्टर का बँगला कौन नहीं जानता था। बँगला बहुत सुन्दर और भव्य था। आस-पास लगे वृक्षों से भी ऊँचा। धूप में ऐसे चमक रहा था जैसे अभी बनकर तैयार हुआ हो। बंगले के चारो तरफ दूर-दूर तक हरी घास से ढकी धरती पड़ी थी और उसके चारो ओर चहारदीवारी खिंची हुई थी। जगह-जगह वर्दी पहने पगड़ी बाँधे कमर में पेटी लगाये चपरासी खड़े थे। इनका रोबदाब टेनेरी के चौकी-दारों से कहीं अधिक था।

हम लोग फाटक पर पहुँचे तो एक चपरासी ने आगे बढ़कर हमें रोक दिया।

"मंगतों को यहाँ आने का हुक्म नहीं है।"

"हम माँगने नहीं आये हैं, हमारा बेटा यहाँ नौकर है; मुर्गन!"

चपरासी का क्रोध उतर गया। उसने सहानुभूति से हमारी ओर देखा और मौन रहकर फाटक खोल दिया।

"चलो तुम्हें उसके घर पहुँचा दूँ —नौकरों के क्वार्टर पिछवाड़े हैं। उसकी घरवाली होगी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

—मेरी बहू जिसे कभी देखा नहीं। लड़के को भी बरसों से नहीं देखा। कौतूहल की उत्तेजना और झेप से सिर चकराने लगा और पाँव काँपने लगे। उत्तेजना में ये आदमी के पीछे दौड़ से पड़े।

एक मकान दिखाकर चपरासी बोला, "अम्मू भीतर होगी, तुम पुकार लो। हम जा रहे हैं।" और वह चला गया।

मकान डाक्टरनी साहब के नौकरों का-सा ही था। वहाँ तीन कमरे थे, यहाँ बारह। सामने दरवाजा खुला था और एक बच्चे के चीख कर रोने की पुकार सुनाई दे रही थी।

"आ"—मुर्गन के बाप ने रुंधे हुए कंठ से कहा, "भीतर चल।"

किवाड़ खुले थे, परन्तु भीतर जाने का साहस नहीं हो रहा था। अनजाने घर में भीतर कैसे चले जाते। संकोच से पाँव जड़ हो रहे थे। दरवाजे से पुकारा।

एक दुबली सी लड़की साड़ी सँभालती हुई दरवाजे पर आयी। सिर के केश बिखरे हुए थे। एक बच्चा गोद में और दूसरा उसका आँचल पकड़े साथ खड़ा था। हमें देखकर उसके माथे पर बल पड़ गये।

"कौन हो, क्या चाहिए?"

लड़की के मुख पर न आदर-स्वागत की मुस्कान थी, न नयनों में अपनेपन का भाव। उसने हमें भीख माँगनेवाले समझा होगा। कुछ और समझती भी क्या। हमारे पास कोई गठरी-मुठरी नहीं थी। हाथ में कोई बर्तन तक नहीं। संकोच और लज्जा से मन चाहा, धरती में गड़ जाऊँ।

"मुर्गन के मा-बाप हैं"— इन्होंने झेपते हुए धीरे से कहा, "तू बहू है?"

लड़की ने गर्दन झुकाकर हामी भर ली और सहम कर एक ओर हटकर हमें मार्ग दे दिया। विस्मय में कुछ बोल नहीं पायी, दाँत से होठ दबा कर रह गयी।

"ये पोते हैं?" मैं उसकी झेप को अनदेखा कर बोली, "इन्हें देखने को बड़ा मन था।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"हाँ"....लड़की होंठ निपोर कर बोली—"सो तो है। बेटे को भी तो देखने का मन करता होगा? वह यहाँ हैं कहाँ।"

"नहीं है?"—इन्होंने पूछा, "सुना था, यहाँ है। कहाँ गया है?"

"जाने कहाँ गया है"—लड़की बोली, "वह क्या आयेगा।"

"क्या कह रही है तू! उसको बहू नहीं है! क्या कह रही है?"

"मुझे छोड़ गया है।"—लड़की के स्वर में क्रोध था, "दो बरस हो गये।"

इतनी दूर इसी निराशा की खोज में आया था। अब कोई मार्ग नहीं था, न कहीं आगे जाने का, न पीछे जाने का। हाथ में जो कुछ था, गँवा चुके थे। बेच डालने को भी कुछ नहीं था। मेहनत-मजदूरी करने के लिए शरीर में शक्ति भी नहीं थी।

मेरी आँखें अपनी बहू की कोठरी में चारों ओर घूम रही थीं। दिखायी दे रहा था कि हमारे लिए यहाँ जगह नहीं है। उसके अपने लिए भी कुछ नहीं था। एक कटोरा भर भात पड़ा था। उससे दो बच्चों और मा का ही क्या बनता। गोद के बच्चे का शरीर सूख कर काँटा हो रहा था। उसकी रोने की पुकार में भूख की पीड़ा थी। भूख की पीड़ा का रोना बच्चों के दूसरे रोने से भिन्न ही होता है।

"कुछ पता नहीं चल सकता कि कहाँ गया है?"—नुर्गन के बाप ने पूछा—"कुछ जतन किया जाय......।"

"मैंने सब कर लिया है"—अम्मू क्रोध में बोली, "क्या नहीं किया मैंने! वह शहर छोड़कर चला गया है। किसी को कुछ पता नहीं।"

लड़की क्रोध में बात कर रही थी, जैसे हम दोषी हों। एक तरह दोषी थे भी। लड़का तो हमारा ही था। अच्छा था या बुरा। उसमें यह बुराई जाने कैसे आ गयी।

हम लोग घड़ी भर बैठे होंगे कि अम्मू उठ खड़ी हुई और बोली—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"मुझे काम पर जाना है....देर हो रही है। दोपहर में आऊँगी तो बच्चों को खाने को दूँगी। तब तक तुम लोग बैठो।"

"कहीं दूर जाओगी?"

"नहीं,.....''बंगले में झाड़-बुहारू का काम है।"

"कैसे कर पाओगी इतना काम?"—मैं बोली, "तुम कमजोर हो, बंगला तो बहुत बड़ा है।"

अम्मू ने विवशता में गर्दन लटका कर उत्तर दिया—"मैं अकेली थोड़े करती हूँ.....। किसी तरह पेट भी तो पालना है। दूसरी जगह पन्द्रह रुपया महीना कौन दे देगा। रहने के लिए कोठरी मुफ्त में है।"

छोटा बच्चा अम्मू की गोद में ही था। उसने कोठरी के कोने में चीथड़े बिछा दिये और लड़के को उनपर लिटा दिया। बच्चा चीख कर रोने लगा।

"ला, लड़के को मुझे दे दे, नहीं तो रोयेगा"—मैं बोली।

"उठा लो"—अम्मू ने बच्चे को मेरी गोद में दे दिया और बोली—"जानती हो, यह उसका लड़का थोड़े ही है, तुम्हारा पोता नहीं है।"

"हाँ-हाँ।"

"कोई क्या करे, पेट तो पालना है"—अम्मू क्रोध में कहती गयी। मानो किसी निन्दा और प्रताड़ना का उत्तर दे रही हो; परन्तु उसकी क्या निन्दा और प्रताड़ना होती। पेट तो सभी को पालना है।

अम्मू दोपहर में लौटी। अब भी उसकी आँखें वैसे ही रूखी थीं और चेहरे पर मौन विरोध। मानो कह रही हो—मैंने तो यों ही भलमनसाहत में बैठने को कह दिया था, तुम जम ही गये! बिना बोले उसने चूल्हा जलाया और भात बनाने के लिए रख दिया। बच्चा उसकी गोद में निरन्तर खिनखिनाता जा रहा था। नल से पानी लाई। हमें भात देकर बोली—"तुम लोग कहाँ जा रहे हो? क्या गाँव लौट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाओगे ?" उसकी रूखी आँखें कह रही थीं कि यहाँ तो तुम्हारे लिए जगह है नहीं, तुरन्त ही चले जाओ।

"गाँव ही लौट जायेंगे"—इन्होंने स्वीकार किया, "और कहाँ जायेंगे ? जानती हो, लड़के के यहाँ ही आये थे।"

"उसने सभी के साथ धोखा किया"—अम्मू समर्थन में बोली।

"जाने क्या बात हुई होगी"—मैं बोली। लड़का अम्मू का आदमी था, परन्तु बेटा तो हमारा हीं था। कैसे सब दोष लड़के के सिर पर धर दिया जाने देती।"

अम्मू के चेहरे और आँखों में क्रोध प्रचण्ड हो उठा। बोल उठी, "और क्या होगा, जुए और औरतों के पीछे भागने की लत।"

हम लोग एक दूसरे को आँखों में देख चुप रह गये। अपनेपन और संबंध के स्थान पर क्रोध और विरोध की अग्नि भभक उठना चाहती थी। मैं अपने को वश में कर उसकी ओर देखती रही। दुबली-पतली कमजोर लड़की पति की छोड़ी हुई, निस्सहाय। वह दो बच्चों को पालने के लिए जान लड़ाये दे रही थी।

"ठीक ही कहती है"—मैंने स्वीकार कर लिया।

अम्मू का क्रोध उतर गया। उसकी आँखें भीग गयीं, गर्दन झुक गयी।

ये उठ खड़े हुए और बोले—"अब चल दें, फिर अंधेरा हो जायेगा। अजानी जगह रात में कहाँ जायेंगे . . . . ।"

"कहाँ जाओगे ?"—अम्मू ने फिर पूछा। उसके स्वर में अब क्रोध नहीं था, न रुखाई थी। बल्कि चिन्ता और दुविधा का स्वर आ गया था। मानो हम लोगों से अपनापन और संबंध स्वीकार करने के लिए बाध्य हो; परन्तु अपने बच्चों और अपने पेट का अन्न बाँटने का भय भी हो।

"गाँव लौट जायेंगे, वहाँ लड़का-लड़की है"—इन्होंने अम्मू से आँखें बचाते हुए कहा—"बेटी, हमारा क्या है, हमारी तो कट गयी—रही-सही भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फट जायेगी। बेटो, चिन्ता तो तेरी है। अभी तेरी क्या उमर है, बच्चे हैं। अभी बरसों में ये अपने पाँव पर खड़े होंगे।"

अम्मू ने संदेह से इनकी ओर देख दुविधा के स्वर में उत्तर दिया—"अपना और बच्चों का पेट मैं पाल लूंगी।" वह क्षण भर को रुकी। मानो कहना चाहती हो—परन्तु तुम्हारा नहीं। फिर ठहर कर बोली—"इतने दिन से पाल ही रही हूँ।"

—बेचारी दुखिया है, मैंने सोचा। जली-भुनी बैठी है। इसे कोई क्या कहे। अम्मू हम लोगों से आँखें चुराये इधर-उधर कर रही थी। कभी करवट बदलती, कभी हाथ की उंगलियाँ तोड़ने लगती। उसकी बेचैनी समझ मैं बोली—"अच्छा अब चलते हैं।"

ये अपने ध्यान में डूब गये थे। जाकर बोले—"हाँ-हाँ अबेर हो रही है।"

हमने अपने पोते को एक नजर देखा, कोने में पड़े दूसरे अनाथ की ओर भी एक नजर डाली और चल दिये। अम्मू हमारे साथ दरवाजे तक आयी। उसे हमारा बोझ सिर पर पड़ जाने का भय नहीं रहा था, इसलिए उसके मुख पर सहृदयता का भाव आ गया था।

"सफर में ध्यान रखना भगवान् भला करें, घर आराम से पहुंच जाओ"—अम्मू बोली और हमारे पोते को भी दरवाजे तक ले आयी।

दोपहर भर ही यहाँ रहे थे, परन्तु चलते समय वियोग और दुःख मन में भर आया। इन लोगों को फिर देखने की क्या आशा थी। हम लोग सिर झुकाये चले जा रहे थे। दो-तीन बार ललकार सुनाई दी और तब एक चपरासी भागता हुआ सामने आया।

"क्या बहरे हो तुम लोग!" चपरासी चिल्ला कर बोला, "तीन बार कहा कि इस फाटक से नौकरों को जाने की इजाजत नहीं। तुम्हें सुनाई नहीं देता?"

"हम नौकर नहीं हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"नौकर नहीं हो तो क्या हुआ। पिछवाड़े के फाटक से जाओ। क्या हमें नौकरी से बर्खास्त करवा दोगे?"

चपरासी हमें लौटा ले चला। पिछवाड़े एक छोटा फाटक दिखा कर उसने कहा—"यह है रास्ता। जब आना हो इसी फाटक से आना, याद रखो।"

"याद रखेंगे"—इन्होंने उत्तर दिया, "पर फिर आना नहीं होगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[२७]

मंदिर में हमें एक-दो ने पहचान लिया और बोले :—

"फिर आ गये। बहू से झगड़ा हो गया होगा।"

"नहीं भाई, किसी से झगड़ा नहीं।"

कुछ लोगों की आँखों में अनादर और ईर्ष्या का भाव था। ने कुछ सहानुभूति से बात की।

"भई, किसी का भाग कौन जानता है? भगवान् चाहेंगे तो तुम्हारे भी दिन फिर जायेंगे।"

परन्तु दूसरे लोगों को अम्मू की तरह अपने पेट का अन्न बाँटनेवालों से कोई सहानुभूति नहीं थी। बोले—

"जिसे देखो, मुंह उठाये चला आता है। यहाँ क्या कम लोग हैं? सारा देश यहीं आ मरेगा?"

उनकी बात सुनकर क्रोध आया—क्या इन्हीं का पेट है? हमारा पेट नहीं है? हम भूखे नहीं हैं? और फिर जब और भी लोग आये तो हमें भी आशंका होने लगी—कितने लोग चले आ रहे हैं, सबका पेट कैसे भरेगा, ये लोग तो सबको भूखा मारेंगे।

प्रत्येक संध्या संघर्ष अधिक विकट होता जा रहा था। लोग निर्मम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और हिंसक होते जा रहे थे। संघर्ष में लँगड़ों को बैसाखियाँ छिटक कर गिर जातीं और वे पीछे रह जाते। बहुत क्षीण हो चुके लोगों से सहायकों का साथ छूट जाता। वे धक्के खाकर पीछे रह जाते और प्रसाद न पा सकते। मैं इन्हें डाँट-फटकार कर बार-बार आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करती रहती। फिर भी यह बहुधा पीछे रह ही जाते। इन्हें कुछ न मिल पाता और हम दोनों को एक ही पत्तल से पेट भरना होता।

जब भिखारी सोने के लिए, शहर में माँगने अथवा खाने के लिए कुछ और खोजने चल देते, तब संध्या को शीतल नीरवता में अथवा प्रभात और मध्यान्ह में हमलोग मंदिर के आँगन के चिकने फर्श पर लेटे अथवा दीवाल से पीठ लगाये भविष्य के लिए कल्पनाएँ और विचार करते रहते। इस सोच का कोई अंत नहीं था। हमारी कल्पनाओं में सदा धरती, खेत और अपना छप्पर से छाया मकान ही नाचता रहा। हमें सदा खेत भरपूर पकी फसल से लहलहाते हुए और धान की गंध वायु में भरी जान पड़ती थी। आकाश सुहावना और खुला उड़ते और चहचहाते पक्षियों से भरा जान पड़ता। मन फिर वहीं लौट चलने के लिए अधीर हुआ जा रहा था। शहर का जीवन दिन-प्रति-दिन असह्य जान पड़ता।

"इससे तो गाँव में जाकर भूखों मर जाना अच्छा"—यह विह्वलता से कह उठते—"चाहे जो हो, जैसे हो, गाँव चलो।"

कैसे लौट जाते? रुपया पास नहीं था। ये अब भी खेत जोत सकते थे, बो सकते थे। खेती का इन्हें चाव था, परन्तु धरती तो नहीं थी। मैं कात और बुन सकती थी, चटाई बना सकती थी, परन्तु न चरखा था, न कपास। पैसे बिना आदमी क्या करे, कहाँ जाय। इस निर्दय संसार में पैसे के बिना आदमी के लिए पैसा भर भी जगह नहीं। मनुष्य पशु की तरह पैसों की रस्सियों में बंधा रहता है। पैसे की रस्सी जितनी लम्बी होती है, उतनी ही दूर मनुष्य जा पाता है।

एक दिन मन में आया कि गाँव और कस्बों में कई लोग दूसरों के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिए खत-पत्र लिखने और पढ़कर सुना देने का काम करते हैं। शहर में भी तो यह काम हो सकता है। मैं यही काम क्यों न कर लूँ।

"कहीं औरतें भी ऐसा काम करती हैं", इन्होंने कहा—"तुमसे कोई पत्र पढ़ाने-लिखाने नहीं आयेगा।"

"मैं दूसरों से कम लेकर ही काम करूँगी तो जरूर आयेंगे"—मैं बोली, "जतन कर देखें, चार-छः आने रोज मिल जायेंगे तो वही बहुत है।"

"कहाँ कर पाओगी तुम"—ये निराशा के स्वर में बोले। परन्तु इस सूत्र के लिए उत्सुकता से उनका स्वर काँप रहा था।"

"कर क्यों नहीं पाऊँगी—मैं लिख पढ़ लेती हूँ।"

"कागज नहीं, कलम नहीं, स्याही नहीं, कैसे करोगी ?"

"जिसे जरूरत होगी, अपने आप लायेगा," मैंने साहस किया, "एक बार करके तो देखें।"

इस कल्पना से उत्साह तो हुआ, यद्यपि कल्पना की सफलता का पूरा भरोसा नहीं था।

"दस रुपये हों तो गाँव लौटने का किराया हो जाय और रास्तों में खाने को भी हो जाय"—ये बोले, "बारह रुपये हो जायँ तो ज्यादा अच्छा हो। रास्ते में दो की जगह तीन दिन भी लग सकते हैं।"

"आठ चिट्ठी भी रोज लिखूँ तो आठ आने हो जायेंगे"—मैं बोली, "चार आने का भात दोनों खा लेंगे तब भी चार आने बच जायेंगे।"

हम हिसाब जोड़ते रहते। साहस बाँधे रहते कि निराश होकर जीवन असह्य न हो जाय। गाँव लौट चलने की आशा का दीपक मन में जलाये रहते।

मैं उस दिन और कई दिन तक सड़क के किनारे बैठी पुकारती रही। जहाँ दूसरे लोगों की, गाड़ी और खोंचे और भिखारियों की पुकारें थीं, मेरी भी पुकार उनमें मिल गयी। राह चलते लोग मेरी पुकार सुनकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक आँख मेरी ओर देख लेते। बेकार लोग कुछ देर खड़े रह जाते और छोकरे पास खड़े होकर मुझे सुना कर बात करने लगते—

"सुना, कहती है पढ़ सकती है। देहातियों का मिजाज देखा!"

"कहती है लिखेगी। लिखेगी काहे से?"

"शायद अपनी..." एक ने धीमे से कहा और अट्टहास से हंस पड़ा।

"इस ससुरी बुढ़िया की.......।"

"पागल है चुड़ैल.....''।

मैंने यह सब सुना अनसुना कर दिया; पत्र पढ़ाने और लिखाने-वालों को पुकारती रही।

दिन भर पुकारते-पुकारते मेरा गला बैठ गया। सड़क पर लोगों के पाँव से उड़ी धूल उड़-उड़ कर मेरे मुंह में भर गयी। सिर के केश भी गर्द से भर गये। संध्या समय तब दो आने मिले। हम दोनों ने दो आने का भात लेकर खा लिया।

एक वर्ष पूरा हो गया और दूसरा आरम्भ हुआ। भक्त लोग मंदिर में पूजा के लिए गेंदें के स्थान पर चमेली की मालाएं लाने लगे। हम शहर में ही बने थे। शहर के धूल धुएं से या मन की निराशा से इन्हें गठिया सताने लगा, बार-बार बुखार आने लगा। मंदिर के फर्श पर लेटे हुए रात में नित्य एक ही विचार मन में आता कि किसी तरह इस शहर से भाग कर त्राण मिले। जब ये बुखार में या दर्द से कराहते होते, मेरा कलेजा मुंह को आने लगता। मन होता कि इन्हें लेकर इसी क्षण गाँव की ओर चल दूं। टिमटिमाते प्रकाश में मंदिर की दीवारों और छतों पर बने देवताओं के सम्मुख हाथ फैलाकर मैं यही प्रार्थना करती कि हे भगवान्, इस नरक से छुटकारा दो। फिर गाँव पहुंचा दो।

एक दिन संध्या समय तेज कदमों से मंदिर की ओर चली आ रही थी कि प्रसाद पाने से पिछड़ न जाऊं, नहीं तो रात भूखों काटनी पड़ेगी। जान पड़ा, कोई मेरे पीछे पुकार रहा है। कुछ समझ नहीं सकी, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थमना ही पड़ा और घूम रुकर देखा। एक हाँफता हुआ लड़का पीछे-पीछे आ रहा था। अंधेरा हो रहा था, इसलिए पहचान नहीं सकी।

"अब क्यों पहचानोगी! देखती नहीं हो मैं पूली हूं"—लड़का बोला, "मेरा पैसा दे।"

"कैसे, पैसा मुझे किसी का नहीं देना।" मैं मंदिर की ओर चल पड़ी। लड़का पीछे-पीछे आता हुआ बोला, "क्यों, याद नहीं है, उस रोज तुम्हें डाक्टर के यहाँ पहुंचाया था? तूने देने को कहा था।"

याद आ गया, वही लड़का था, भिखमंगे लड़कों के गिरोह का मुखिया। डाक्टर के घर ले गया था।

"पैसा नहीं दोगी तो अच्छा नहीं होगा," लड़के ने धमकाया—"दगाबाजी से काम नहीं चलेगा।"

मुझे हंसी आ गयी। लड़का बदमाशों की तरह धमका रहा था।

"पैसा होता तो तुम्हें देती क्यों नहीं"—मैंने उसकी खुशामद की, "है नहीं, चाहो तुम देख लो।"

"हाँ दिखा", वह धृष्टता से बोला।

मैं मंदिर की ओर चलती गयी और वह भी पीछे-पीछे आता गया। ये मंदिर से हम लोगों की ओर चले आ रहे थे। मुझे देख कर बोले :—

"कहाँ रह गयी थी तू? प्रसाद बंट भी गया। मैंने एक पत्तल ले ली, नहीं तो दोनों भूखों मरते।"

"इस लड़के ने रोक लिया", मैं बोली, "झगड़ा कर रहा है।"

इन्होंने लड़के की ओर देख कर पूछा—"कौन है यह? तुमसे क्या कह रहा है?"

लड़का आगे बढ़कर बोल उठा—"अपना पैसा माँग रहा हूँ, देगा कैसे नहीं।"

इन्हें भी याद नहीं आया बोले—"कैसा पैसा, किस बात का?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"इसने हमें डाक्टर विरला का घर दिखाया था न, जब हम शहर में आये थे"—मैंने याद दिलाया।

ये चुप रहे। केले के पत्ते के तीन टुकड़े कर इन्होंने प्रसाद तीन जगह बाँट दिया। मैंने दिन भर की कमाई से एक परौंठा खरीद लिया था, उसके भी तीन टुकड़े कर दिये।

"परौंठा खरीदती है तो पैसा होगा ही"—लड़का बोला।

मैंनें एक गहरी साँस लेकर बताया—"दिन भर चिट्ठी लिखकर दो आने कमा पाती हूँ, कभी पैसा दो पैसा, और उससे खाने को कुछ खरीद लेती हूँ।"

इन्होंने लड़के को समझाया—"पेट तो भरना होगा भैया, मंदिर में तो कभी प्रसाद मिल जाता है, कभी नहीं। कभी एक ही पत्तल बाँट कर खा लेते हैं।"

पूली को हमारी बात पर विश्वास हो गया। वह भी प्रसाद खाने लगा। मैंने फिर देखा कि उसके हाथ में उँगली नहीं, केवल ठूँठ मात्र था। बिना उँगलियों के उसे कोई असुविधा भी नहीं हो रही थी। बस एक आध बार उसे एक स्थान पर दोनों हाथ लगाने पड़े। मेरी आँखें उसके हाथों की ओर लगी हुई थीं। पूली का उस ओर ध्यान नहीं था। सोचा, वह लोगों के देखने की परवाह भी नहीं करता। कहाँ तक करे?

पूली ने भात खाकर नल पर हाथ धोये और हमारे समीप ही फर्श पर लेट रहा।

उसे जाते न देख विस्मय हुआ। उसका कंधा टोह कर कहा "घर जा न, तेरी बेचारी मा फिकर करेगी।"

"मा-वा कुछ नहीं है", पूली बोला", कोई फिकर करने वाला नहीं है। हमें भी किसी की फिकर नहीं।" पूली ने करवट ले ली और सहसा सो गया।

मन में लड़के के लिए एक करुणा सी अनुभव हुई। उसके व्यवहार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से समझ गयी थी कि करुणा दिखाने से लड़का खिन्न ही होगा। उसे अपनी चिन्ता स्वयं कर सकने का भरोसा था, फिर भी उसकी ओर देखती रह गयी। मेरा अभिप्राय समझ कर ये बोले—"लड़का हमसे ज्यादा होशियार है। उसकी फिकर तुम न करना।"

"हाय ऐसा क्यों कहते हो?", मैं बोली—"बेचारा बच्चा ही तो है। बहुत होगा नौ-दस बरस का।"

दूसरे दिन पूली के साहस और आत्मनिर्भरता का परिचय मिला। प्रातः मेरी नींद खुली तो देखा, पूली पहले से ही पल्थी मारे बैठा था और उसके माथे पर गहरे विचार की त्योरियाँ पड़ी हुई थीं।

"तुम दो आने रोज कमाती हो?"—पूली मेरी ओर देखकर बोला, "दिन भर में?"

मैंनें हामी भरी। "हाँ, बहुत हुआ कभी तीन आने, कभी चार आने।"

"अच्छा चार आने ही सही"—पूली बोला, "ज्यादा नहीं कमाना चाहती?"

"क्यों नहीं"—विस्मय से उसकी ओर देखकर उत्तर दिया, "मिलें तो क्यों नहीं।"

"पत्थर की खान नहीं जानती"—पूली बोला, "यहाँ पास ही तो है। पत्थर तोड़ने की अच्छी मजदूरी मिल जाती है।"

"हमें कौन मजदूरी देगा?"—ये उदासी से बोले, "इस बुढ़ापे में हम पत्थर तोड़ पायेंगे?"

"बुढ़ापे से क्या होता है,"—लड़का बोला—"मजदूरी की क्या बात है? जो जितने तोड़ पाता है, उतने के दाम मिल जाते हैं।"

"हमसे यह काम होगा भी?"

"होगा क्यों नहीं। खान में सब तरह का काम है। मर्द, औरतें, बच्चे, सब काम करते हैं। मैं भी करूँगा"—पूली ने कहा, "मैं हथौड़ा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं पकड़ पाता। आदमी जल्दी-जल्दी काम करे तो बहुत पैसा कमा सकता है।"

"बेटा तुम जो कहो वही करेंगे।"

पत्थरों पर चोटें पड़ने, लोहे से लोहा टकराने और विस्फोट के शब्दों का मिला-जुला, स्पष्ट सा कोलाहल दूर ही से सुनाई दे रहा था। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते जाते, कोलाहल ऊंचा होता जाता और आपस में बात करने के लिए बहुत ऊंचे स्वर में बोलना पड़ता।

खान पहाड़ी की ढलान पर थी। पहाड़ी चामुण्डी पर्वत-जैसी शांत और हरी-भरी नहीं, रूखी-सूखी थी। कहीं-कहीं कँटीली झाड़ियों के झुण्ड मात्र थे। पहाड़ी एक ओर सीधी दीवार की तरह कटी हुई थी। यहीं पत्थर काटने का काम हो रहा था। बड़ी-बड़ी चट्टानें लुढ़की पड़ी थीं और जहां-तहाँ टेढ़ी-मेढ़ी बड़ी-बड़ी गुफाएँ खुदी हुई थीं। सब तरफ आदमी ही आदमी फैले हुए थे। बड़े और सशक्त मर्द, अपने से भी बड़ी-बड़ी चट्टानों को तोड़ने के लिए टाँकियाँ चला रहे थे। स्त्रियाँ और बच्चे चट्टानों के किनारे झाड़ रहे थे। हजारों बाहें ऊपर-नीचे उठ और गिर रही थीं। लोग कभी झुकते कभी सीधे खड़े होते। कई स्थानों पर कुछ-कुछ देर बाद एक तीखी, इंजन की सीटी जैसी सुनाई देती और लाल झंडा लहरा जाता। काम करनेवाले लोग तुरन्त भाग कर कुछ दूर परे हो जाते और भयंकर विस्फोट के शब्द से धूल और पत्थर की बौछार आकाश में उड़ जाती।

"बड़ी चट्टानों को कमेटी के आदमी बारूद से उड़ा देते हैं", पूली ने समझाया, "बाकी काम जो चाहे करो।"

सभी उमरों के और सभी तरह के लोग यहाँ काम कर रहे थे। सभी तरह का काम था; परन्तु हम कहाँ और क्या शुरू करते?

"यहीं काम शुरू कर दो"—स्थान की ओर संकेत कर पूली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बोला, "सुरंग उड़ाये जाने पर यहाँ से भागना नहीं पड़ेगा।" पूली स्वयं एक ओर बैठ कर हमारी ओर ध्यान से देखने लगा।

"यह काम तो पहले कभी किया नहीं," मैं दुविधा से बोली, "क्या करना होगा......।"

"इसमें क्या कठिन है, बस पत्थर को तोड़ना है", पूली ने बताया—"ऐसा बड़ा पत्थर ले लो जो टूट जाय।" पत्थर प्रायः छोटे-छोटे ही थे। "इन्हें तोड़ते जाओ और क्या।"

यही तो मुश्किल था कि पत्थर न बहुत छोटा हो जाय न बहुत बड़ा रहे। टुकड़े कभी बहुत बड़े रह जाते कभी चूरा हो जाता। कंकड़ियाँ और गर्द उड़कर मुख और आँखों में जाने लगतीं।

"काम मुश्किल ही है", मैं बोली। इन्होंने भी कहा, "एक हथौड़ा होता तब भी बात थी।" परन्तु बहुत से लोग हमारी ही तरह थे, जो मजे में पत्थर से ही पत्थर तोड़ रहे थे। मैं अपना काम छोड़ विस्मय से उनकी ओर देख रही थी। वे लोग बड़ी सुविधा से पत्थरों के एक जैसे आकार के टुकड़े कर-कर के ढेर लगाते जा रहे थे। एक बार हमारे बहुत समीप ही सुरंग उड़ाई गयी। पत्थरों की खटपट और काम में ध्यान लगा होने के कारण हम न तो सीटी सुन सके और न लाल झंडा उठने की ओर ध्यान गया। पूली ने चिल्लाकर हमें चेतावनी दी। हम सिर पर पाँव रखकर भागे तो जान पड़ा, धरती हमारे पाँव तले काँप रही है और कान भयंकर विस्फोट से बहरे हो गये हैं।

सुरंग लगाये जाने से आकाश में उड़ गये पथर और धूल पृथ्वी पर बरस रहे थे। पूली ने फिर चेतवानी दी—"आँखें और कान खोल कर रखो। सीटी बजी, लोग तुम्हारे लिए चिल्लाते रहे, तुमने सुना ही नहीं। यह सुरंग भी बड़ी मुसीबत है। इससे बना-बनाया ढेर बिखर जाता है। पर डर की ऐसी कोई बात नहीं।"

हमारे तोड़े हुए पत्थरों के ढेर सचमुच बिखर गये थे। आस-पास

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के लोगों के ढेर एक में मिल गये। अपने अपने पत्थरों को सब ने फिर से बटोर लिया। उसमें कुछ अपने गये कुछ दूसरों के आ गये। इस बात पर किसी ने झगड़ा नहीं किया। "कभी दस-पाँच अपने चले गये तो कभी दूसरे के आ गये। सब बराबर हो जाता है"—एक आदमी ने तटस्थता के स्वर में कह दिया।

लोगों में भाई-चारे का व्यवहार था, कोई झगड़ना नहीं चाहता था। देख कर अच्छा लगा।

सूर्य डूब गया तो आस-पास के लोगों ने काम बन्द कर दिया। पत्थरों के टकराने और लोहे बजने के स्वर सूर्य के प्रकाश के साथ ही शांत हो गये। केवल कहीं-कहीं अब भी हथौड़े चलने की आहट आ रही थी। हमारा पत्थरों का ढेर बहुत बड़ा नहीं था, परन्तु संतोष था कि बहुत छोटा भी नहीं था।

"अब बताओ पैसे कौन देगा ?"—मैंनें पूली से पूछा।

"घबराओ नहीं, पहले एक बोरी लानी होगी,"—उसने उत्तर दिया। पूली ने इन्हें पत्थरों के ढेर के पास बैठने को कहा और मुझे लेकर जमादार की झोपड़ी की ओर चल दिया।

मैं पूली के पीछे-पीछे चली। सब तरफ आदमी ही आदमी थे। कोई पत्थरों से भरी बोरी पीठ पर लिये जा रहा था, कोई खाली बोरी लेकर आ रहा था, कोई बाँस की खपचियों की बनी डलिया में पत्थर लिये जा रहा था। ढीली पड़ गयी डलिया के छेदों में से पत्थर गिरते भी जा रहे थे।

जमादार की झोपड़ी खान से कुछ अन्तर पर थी। झोपड़ी की दीवारें लकड़ी के तख्तों की और छत फूस की थी। दो दरवाजे थे। एक दरवाजे से लोग एक-एक करके पत्थर लेकर भीतर जा रहे थे और दूसरे से पत्थर छोड़ पैसा लेकर बाहर निकल रहे थे। मैं भीतर जानेवालों की पाँति में मिल गयी। पूली जाने कहाँ से एक कटोरा ले आया। उसे उसने अपने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

टुंडे हाथ की कोहनी में थाम लिया। उसके स्वर में विचित्र परिवर्तन आ गया। वह काँपते और रोते हुए स्वर में माँगने लगा—"दाता, गरीब अपाहिज, अनाथ को पैसा दे, राम भला करेगा ····"।

मैंने सोचा, इन लोगों से क्या माँगना। बेचारा गरीब किसी को क्या देगा। परन्तु अचम्भा हुआ पूली के कटोरे में एक-दो पैसे आ गए। अब वह पैसों को कटोरे में बजा-बजा कर माँगने लगा।

मैं पाँति में कदम-कदम बढ़ती जा रही थी। मेरे पीछे का आदमी दो टोकरियाँ उठाये था। वह मुझे जल्दी आगे चलने का संकेत करने के लिए बार-बार टोकरी मेरी पीठ में गड़ाये दे रहा था। मैं चिढ़ गयी और घूम कर देखा। आदमी बहुत बूढ़ा और दुबला-पतला था। टोकरियाँ उसकी कमर से खिसकी जा रही थीं। वह अपनी सूखी-सूखी बाहों से टोकरियों को कमर पर सँभालने का यत्न करता तो टोकरी मुझसे छू जाती। उसकी अवस्था देखकर मेरा क्रोध जाता रहा। पूछा—

"बहुत थक गये हो बाबा।"

"क्या थकना ···दो टोकरी तोड़ लेता हूँ।"

"हम भी दो आदमी हैं," मैं बोली—"एक टोकरी भी नहीं तोड़ पाये होंगे।"

"कोई बात नहीं, काम जान जाओगी तो तोड़ पाओगी। अभी नयी आई हो ना।

"हाँ, आज पहली बार।"

"सो तो देख रहा हूँ," बूढ़ा बोला, "बोरी, डलिया सुबह आते ही ले लिया करो, नहीं तो बड़ी अबेर हो जाती है। पहले बोरी लेने आओ, फिर पत्थर लेकर आओ।"

मन में सोचा पूली तो समझदार है, उसे यह नहीं मालूम था। फिर सोचा—कितना भी चालाक बने, है तो अभी लड़का ही।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपनी बारी से मैं भीतर गयी। एक आदमी ईंटों पर तखता रखे, सिर झुकाये कागज पर कुछ लिख रहा था। आँखें उठाये बिना बोला "कितनी।"

"एक।"

उसने कागज पर कुछ लिख लिया और हाथ में दाम ले मेरी ओर देखा—"बोरी कहाँ है?"

"बोरी माँगने आयी हूँ," सहम कर उत्तर दिया।

"तो पहले क्यों नहीं कहा!" आदमी क्रोध में बोला, "मुफ्त का पैसा लेगी?"

आदमी ने दाम नीचे रख दिये और समीप लगे टोकरियों के ढेर की ओर संकेत कर बोला—

"टोकरी उठा ले, बोरी नहीं है। जल्दी आ, नहीं तो आज दाम नहीं मिलेंगे।"

मैं डलिया लेकर दौड़ती हुई लौटी। जल्दी-जल्दी पत्थर भरे और फिर झोपड़ी के सामने पाँति में खड़ी हो गयी। अभी बहुत से लोग खड़े थे।

"दो बोरी एक रुपया ··· तीन बोरी डेढ़ रुपया ···।" जमादार थकी सी आवाज में बोले जा रहा था। मैंने झुक कर डलिया उसके सामने रख दी।

"एक बोरी आठ आने" जमादार बोला, और फिर चिढ़ उठा—"अरी यहाँ नहीं। वहाँ, दूसरों के साथ रख।"

टोकरी को उठाकर दूसरे लोगों के साथ रखा। आखिर दाम मिलने का समय आया। जमादार ने दो चवन्नियाँ उठाकर मेरे हाथ पर रख दीं।

ये उत्कट प्रतीक्षा में बाहर खड़े थे। मुझे देखते ही पुकार उठे—"क्या मिला।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"आठ आने।"

हम दोनों एक दूसरे की आँखों में देख कर मुस्करा दिये।

"अब तो घर जाने को हो जायेगा," इन्होंने धीमे से कहा।

हम लोग कुछ देर पूली की राह देखते खड़े रहे। लड़का स्वयं ही हम लोगों के साथ हो लिया था तो उसे कैसे छोड़ जाते।

पूली आया तो मैंने पूछा "क्यों, कुछ मिला?"

"कुछ नहीं" पूली ने कटोरा दिखा दिया, "बस इकन्नी।"

मुझे उसके कटोरे में बहुत से पैसे बजते हुए जान पड़े थे। इन्होंने भी देखा था। ये मुस्करा कर बोले, "बड़ा चालाक है तू। एक इकन्नी को ही इतना बजा रहा था।"

पूली चुप रह गया और सोच कर बोला, "बजाने को तो चार पैसे हो गये थे। पैसे देकर इकन्नी ले ली।"

लड़का बहुत चालाक था।

× × ×

पूली सुबह तड़के हमारे साथ खान पर जाता और संध्या समय मंदिर पर लौट आता। मंदिर में मेरी कमर से पैसे की चोरी हो गयी थी, इसलिए मैं डर गयी थी। इन्हें भी पैसा संभाल कर रख लेने का भरोसा नहीं था। हम सब पैसा पूली को ही सहेज देते। वह हमारी अपेक्षा कहीं चतुर था।

हिसाब लगाया, आठ आने रोज कमाकर चार आने भी बचाते जायँ तो चालीस दिन में नहीं तो दो महीने में गाँव लौटने लायक हो जायेगा। पूली ने बंटे खरीद लिये थे। हमारे समीप खाली बैठा वह अपने कटोरे में बंटों को उछाल रहा था। इन्होंने उससे पूछ लिया—

"क्यों रे, तू भी हमारे साथ चलेगा?"

लड़का हमारी ओर विस्मय से देखने लगा। शहर छोड़ कर गाँव जाने की बात उसे अच्छी नहीं लगी। बोला—"नहीं, मैं तुम्हारे गाँव नहीं जाऊँगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"वहाँ यहाँ से बहुत अच्छा है," इन्होंने स्नेह से समझाया—"हरे-भरे खेत, ठंडी-ठंडी हवा। जब धान की फसल पकती है तब कैसा लगता है। तुमने कभी देखा है।"

"मैं गाँव में क्या करूँगा" पूली नाक चढ़ाकर बोला, "मैं खेतों में क्या करूँगा। खेती का काम मैं नहीं जानता। तुम्हारे अपने खेत कहाँ हैं। अपने साथ मुझे भी भूखों मारोगे!"

"सच कह रहा है," ये बोले, "हमारे पास क्या रखा है तेरे लिए।"

"गाँव जाकर क्या करोगे?"—पूली ने कहा, "तुम्हीं तो कह रहे थे, खेत-धरती तुम्हारे पास है नहीं। गाँव में क्या खाओगे?" पूली ने कहा।

क्या उत्तर देते। गाँव में निर्वाह के लिए कुछ नहीं रहा था, इसीलिए गाँव छोड़ आये थे। शहर में भी कुछ नहीं था, इसलिए गाँव लौट जाना चाहते थे। दिन में एक जून खा लेते थे, बस यही सहारा था। कभी कपड़ा खरीदने की जरूरत होती; इन्हें बुखार आता रहता था इनके लिए दवा-दारू की जरूरत होती तो गाँठ में दाम न होते।

"तू नहीं समझता, लड़का है न" ये बोले, "यह हमारा घर थोड़े ही है, यहाँ कैसे रह सकते हैं।"

"तो यहाँ आये क्यों थे?"

"आये क्या थे, आना पड़ा—लड़के को ढूंढ़ने आये थे। लड़का जाने कहाँ चला गया। गाँव में छोटा लड़का है, उसी के यहाँ किसी तरह दिन काटेंगे।"

"इतनी दूर जा पाओगे?"—पूली ने रूखे स्वर में पूछा, "इस बुढ़ापे में तुमसे इतना चलते बनेगा?"

"तो और जायें कहाँ"—ये बोले, "जिस धरती में जनमे हैं वहाँ तो पहुंच जायेंगे। इस शहर में हमारा निर्बाह नहीं। इस बुढ़ापे में नयी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चाल चलते नहीं बनता।" इन्होंने पूली से पूछा, "हम चले जायेंगे तो तू क्या करेगा?"

"जैसे पहले चलता था वैसे ही चलेगा," पूली ने लापरवाही से उत्तर दिया, "कभी माँग लिया, माँगने से नहीं मिला, दाँव लगा तो चुरा लिया··" दूसरे लड़के भी तो हैं·····। शहर के सब गली-मुहल्ले जानता हूँ।" पूली ने गर्व से कहा, "लोगों ने बीसियों बार मेरा पीछा किया; मैं कभी हाथ नहीं आया। तुम्हारे गाँव चला जाऊँ तो अनजानी जगह में कहाँ दाँव लगेगा, कहाँ छिपने की जगह होगी। शहर में ही रहूँगा।"

पूली को छोड़ जाने को मन नहीं चाहता था। परन्तु उसे कहते भी क्या। इतने दिन में उसका बहुत सहारा हो गया था। लड़का चालाक भी था, लड़के के रोग की बात सोच कर मन में एक टीस भी उठती थी। अभी तो उसकी उंगलियाँ ही झड़ी हैं, बाहें या पाँव भी जाते रहे, आँखें ही चली गयीं तो क्या करेगा! तब इसकी बेपरवाही, चालाकी और साहस से क्या होगा? आदमी के सामर्थ्य की कोई सीमा तो है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[२८]

दिन बीतते जा रहे थे। हम आने गिनते-गिनते रुपए गिनने लगे। चार-पाँच-छ: रुपए। पूली भी उत्तेजित हो जाता। काम का ढब आ गया। कभी पत्थर भी नरम मिल जाता तो दिन भर में ही रुपया कमा लेते। जो भी कमाती मैं पूली को सौंप देती। वह दाम अपनी कोपीन में छिपा लेता। जाने कहाँ से वह आने देकर रुपये ले आता और रुपये देकर नोट, यह हमें मालूम नहीं था। न उसने कभी बताया, न हमने कभी पूछा। परन्तु कभी पैसा भी इधर-उधर नहीं हुआ। हम डूबते हुए सूर्य की लाली लिये झुटपुट में लौट रहे थे। हल्की-हल्की ओस जैसी फुहार पड़ रही थी। पाँव के नीचे भीगी हुई सड़क, ठंडी धरती के स्पर्श जैसी जान पड़ती थी। मानो गाँव में ही पहुँच गये हों।

खान से शहर की ओर आती सड़क पर चले आ रहे थे। समीप आकर कई सड़कें और गलियाँ फटने लगीं। बड़े बाजार वाली सड़क पर आकर ये बोले––

"मैं मंदिर में चलता हूं, थकान लग रही है, तू परौंठे लेती आ।"

"परौंठे ही क्या, कुछ और भी ले आयें" मैंने पूली की ओर मुस्करा कर कहा––"अच्छा देखना क्या लाते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पूली साथ-साथ चल रहा था। मैं छोटी सी दुकान की ओर बढ़ी जा रही थी। सदा उसी दुकान से सौदा लेती थी। दुकानवाला भला था, पहचानने लगा था। बेचारा खूब बड़ा परौंठा चुन कर मुझे दे देता।

दुकानदार परौंठा पत्ते में लपेट कर दे रहा था तो मैं बोली—"जरा ठहरना, कुछ और भी दे दो।"

"ओहो, आज खूब पैसा कमाया है," हलवाई दाँत निकाल कर बोला—"जो चाहे ले, यहाँ क्या कमी है, और सबसे सस्ता। आलू की कचरी दे दूं, प्याज के पकौड़े दे दूं ? मिठाई लेगी लड़के के लिए, पेड़ा ले ले, लड्डू ले ले।"

मैं विस्मय से मिठाइयों के थालों की ओर देखती रह गयी। यह सब तो कभी खरीदा नहीं था। मेरे साथ खड़ा पूली भी देख रहा था। बोला "चिउड़ा ले ले, उसमें मूंगफली भी है। चाहे आलू के सेव ले ले....।"

बहुत सोच विचार कर हमने छः आने के पकौड़े और चार आने के परौंठे ले लिये।

सोचा, एक दिन खरच भी लिया तो क्या बात है। कौन रोज-रोज की बात है। किसी दिन तो मन की भी करनी चाहिए।

परन्तु हमारी दरियादिली का अन्त इतने से ही नहीं हो गया। बाजार में एक खिलौनेवाला मिल गया। आदमी अवश्य चालाक रहा होगा हमारे मन की उमंग को भांप गया। हमें देख उसने एक बैलगाड़ी का खिलौना निकाल कर सड़क पर रख दिया और उसमें बंधी डोर से बाँध कर खींचने लगा। गाड़ी में रखा छोटा सा नगाड़ा ढम-ढम बजने लगा।

"ढम-ढम गाड़ी," पूली किलक कर पुकार उठा, "खरीदेंगे नहीं, देख लें"—पूली ने मेरा आँचल खींच कर कहा। हम दोनों खड़े होकर देखने लगे। खिलौना बहुत सुन्दर था, बिल्कुल असली गाड़ी जैसा। सुन्दर सुन्दर पहिये, बड़ा सुन्दर रंग, सामने दो बैल लगे हुए।

चालाक खिलौनेवाले ने गाड़ी में बंधी डोरी पूली की ओर बढ़ा कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहा—"ले, डोरी खींच, ढोल अपने आप बजेगा।" बच्चा इस प्रलोभन को कैसे रोक पाता। स्वयं मैं ही उसे देखकर मोहित हो रही थी। पूली डोरी खींचने लगा। गाड़ी चलने लगी, बैलों के पाँव उठने लगे और गाड़ी पर बैठे आदमी के हाथ भी हिलने लगे। उसके हाथों में थमी छोटी-छोटी कमचियाँ तनी हुई झिल्ली से बने ढोल पर पड़ने लगीं। नगाड़ा ढम-ढम बजने लगा। गाड़ी तेजी से चलाने पर नगाड़ा भी तेजी से बजने लगता।

"सिर्फ दो आना; इससे सस्ता क्या मिलेगा....। दो आने की तो लकड़ी लग गयी। इसमें कोई लाभ नहीं है। दिन भर कुछ बिका नहीं, इसीलिए दे रहा हूँ," खिलौनेवाला बोला।

मैंने पूली की ओर देखा। उसकी आँखें मेरी ओर उठ गयीं। तारों जैसी चमक रही थीं। गाड़ी की डोरी उसके हाथ की उंगलियों के ठूठों में थमी हुई थी। वह अब भी उसे धीरे-धीरे बजा रहा था।

"मन करता है तो ले ले, तेरे पास अपना पैसा है," मैं बोली, "तू रोज माँगता है....। मैंने तो आज पहले ही बहुत खर्च दिया।"

"और दो आने में क्या हो जायेगा," पूली ने लाड़ में कहा, "फिर और कुछ नहीं मागूँगा।"

"तेरे पास अपने पैसे हैं तो," मैं फिर बोली, "मैंने देखे हैं।"

"सब खर्च हो गये," पूली कातर स्वर में बोला—"पहले लोग दे देते थे, अब नहीं देते....कौन देता है।"

मन में ख्याल आया—बच्चा ही तो है बेचारा। कितना ही होशियार हो, उमर ही क्या है। इसे मिला ही क्या है।

मैंने हामी भर ली। पूली बटुआ निकालकर पैसे टटोलने लगा। वह निकाल नहीं पाया तो मैंने बटुआ लेकर उसके शरीर की गरमी से गरम-गरम दो आने निकाल कर खिलौनेवाले को दे दिये।

फिजूलखर्ची एक बार शुरू हुई तो हाथ रोकना ही कठिन हो गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मन नहीं माना। दो आने और भी निकाले। सोचा—एक गाड़ी इरा के लड़के के लिए भी ले लूं। कल्पना में दिखायी देने लगा कि खिलौने को देख कर पुलकित बच्चे के चेहरे की शीशे जैसी श्वेत त्वचा कैसे लाल हो जायेगी। इरा भी फूली नहीं समायेगी! गद्‌गद् होकर उसका चेहरा भी खिल उठेगा।

खिलौनेवाला दाम लेकर चलता बना। उसे अब मुझसे और क्या आशा हो सकती थी। हम लोग मंदिर की ओर चले जा रहे थे। पूली डोरी थामे गाड़ी को बजाता चल रहा था और मैं दूसरी गाड़ी को परौंठे और पकौड़ों के साथ संभाले थी। उस दिन की कमाई में से शेष दो आने हाथ में थमे थे। मन ही मन डर रही थी, ये देखेंगे तो क्या कहेंगे।

मंदिर के हाते में पहुँचे तो ये सामने दिखाई दिये। मैं जल्दी से कदम उठाकर इनकी ओर बढ़ी। गाड़ी की ढम-ढम से कान फटे जा रहे थे। लड़के को गाड़ी उठा लेने को कहा। खिलौना पाकर उसे तो सुध ही नहीं थी। वह वैसे ही गाड़ी बजाता रहा।

"जाने क्या हो गया मुझे," मैंने लजा कर पश्चात्ताप के स्वर में कहा—"कल मैं और कमा कर कसर पूरी कर दूंगी।"

इन्होंने मेरी ओर देखा। आँखें सुस्त सी लगीं। सोचा—नाराज हो गये। बात भी निराश होने की थी।

"देखो क्या लाई हूँ," मैंने होठों पर जबरन हँसी लाकर कहा, "देखो पकौड़े।" इन्होंने एक आँख मेरी झोली की ओर देखा और खड़े हो गये। पत्थर के फर्श पर इनके पाँव काँप रहे थे। इन्हें दौरा सा आ गया।

सँभलने पर वे बोले—"खाने की ये चीजें देख कर मेरे पेट में मरोड़ सा उठ आया।"

"नहीं-नहीं," मैं बोली, "तुम बहुत कड़ी मेहनत कर रहे हो। तुम्हारी उमर ऐसी मेहनत करने लायक नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"सुबह से ही बुखार है मुझे," ये बोले।

मैंने हाथ से छूकर देखा तो इनका शरीर ताप से जल रहा था। बुखार खूब चढ़ा हुआ था। मन में आया, बुखार था तो खान पर क्यों गये थे। परन्तु कहा, "अच्छा अब लेट रहो, शरीर ठीक हो जायेगा।" उनका सिर गोद में रख लिया और पीठ दबाने लगी।

× × ×

पिछली संध्या की फुहार सी वर्षा सुबह तक मूसलाधार बरसने लगी। वायु चौमासे के आरम्भ में जैसे बिल्कुल थमी हुई थी। जब चलने लगी तो पानी की बौछार बरामदे में पड़ने लगी। इनका शरीर अब भी धीरे-धीरे काँप रहा था। मैंने दो परौंठे उठा लिये और हम लोग खाने लगे। वर्षा अब भी हो रही थी। सोचा—इन्होंने कुछ खा लिया है, तबियत ठीक हो जायेगी। शरीर सर्दी के कारण ही काँप रहा है। मैं बोली, "बरसात में बाहर नहीं जाना। तुम आज मंदिर में ही रहो।"

"ये बरसात तो अब रोज होगी," इन्होंने उत्तर दिया—"मौसमी बरसात में हाथ पर हाथ धरे कैसे बैठे रहें। गाँव जाये बिना चैन नहीं आयेगी।" हम तीनों बरसते में खान की ओर चल दिये। और भी बहुत से मजदूर चीथड़ों में लिपटे कीचड़ से भरी सड़क पर छप-छप करते चले जा रहे थे। जिन लोगों के पास पैसा था, वे चटाई का बना चोंगा सा ओढ़े हुए थे। परन्तु ये चोंगे मँहगे थे। बारह आने में एक आता था। अधिकाँश लोग यों ही चल रहे थे।

वर्षा से सड़क का कीचड़ घुल-घुल कर पतला हो गया था। आगे-पीछे सब तरफ पाँव के चिह्न थे। पाँव के चिह्नों और गाड़ी की लीकों, सब जगह पानी भरा था। घुला हुआ कीचड़ पंजों में से निकल कर पाँव ऊपर तक सनते जा रहे थे। तीन-चार खाली बैलगाड़ियाँ पत्थर लेने खान की ओर जा रही थीं। पहिये कीचड़ में धंसते जाने के कारण बैलों को बहुत जोर लगाना पड़ रहा था। उनके शरीर वर्षा और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पसीने से भीगे हुए थ। चरमराते पहियों से कीचड़ की छीटें भी उड़ती जा रही थीं।

"बड़ा खराब मौसम है भाई," कोई बोला—"ऐसी बरसात में तो हम काम नहीं करेंगे।"

"तू तो हमेशा यही कहता है।"

"नहीं भाई, अब नहीं होता है, चाहे भूखों ही मरें।

आशा, सभी को कोई न कोई आशा थी। आशा पूरी होने के लिए रुपया चाहिए था। वही रुपया कमाने और बचाने में सब लगे हुए थे। कोई बीमारी में आराम करना चाहता, कोई ऋण से छूट जाना चाहता था, कोई घर लौट जाना।

कुछ लोग तड़के ही आकर काम करने में लग गये थे। पत्थरों से पत्थर और लोहा बजने की परिचित आवाजें आ रही थीं। पानी से भीग जाने के कारण आवाजें कुछ मद्धिम पड़ गयी थीं। हम लोग ढालू पहाड़ी पर चढ़ने लगे। ढलवान पर सहारा लेने के लिए मैंने एक झाड़ी की डाल पकड़ ली थी। सो कितना ही समय उन काँटों से मुक्ति पाने में लग गया। ये मेरे पीछे-पीछे आ रहे थे। साँस चढ़ जाने के कारण जोर से फहाँ रहे थे। सीना धौंकनी की तरह ऊपर-नीचे हो रहा था।

"अब घर जाकर ही सुस्ताऊंगा," ये मेरे पास आकर बोले—"तब सुस्ताना ही सुस्ताना है।"

हम लोग दिन भर वर्षा में बैठे पत्थर तोड़ते रहे। ऐसे ही सप्ताह बीत गया। इनकी तबियत वैसी ही रही। सातवें दिन इन्हें फिर जूड़ी आ गयी। तब भी यह माने नहीं, उसी हालत में काम पर गये। ऐसी ही धुन सवार हो गयी थी।

वर्षा थमना ही न चाहती थी। झड़ी लगी हुई थी। हम भीगते रहते और पत्थर भी भीगते रहते। नंगी पहाड़ी पर वर्षा से कहीं बचाव नहीं था। तीखी हवा चलने लगी तो भी उकड़ूँ बैठे लोग काम में लगे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहते। पत्थर पर पत्थर और लोहा बजता रहता। बहादुर पूली भी वर्षा से हार गया। हमारे साथ काम पर न जाता।

बादल घने थे, इसलिए सूर्यास्त से पहले ही अंधेरा हो रहा था। मैं बोरी लेकर दाम लेने चल दी। बोरी पूरी भर नहीं पायी थी, इसलिए पत्थर बोरी में हिल रहे थे।

"तुम चलो," मैंने इनसे कहा, "मैं आ जाऊँगी।"

"अच्छा, देर न करना," ये बोले।

मैं जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाकर जमादार की झोपड़ी की ओर गयी कि पहले पहुँच जाऊँ। उस दिन कम पैसा मिला, परन्तु गाँव जाने के लिए तो पैसा हो ही गया था। सोच रही थी, गाँव जाने के लिए किसी गाड़ी-वाले से ठहरा लें। जाने कुछ कम ही ले ले। कल्पना में अपनी झोपड़ी दिखाई दे गयी। सोचा, शायद अभी खड़ी हो। लड़की का और नाती का सफेद चिट्टा चेहरा दिखाई दे गया। पूली भी चले तो अच्छा ही है। पर वह चलेगा नहीं। उसकी याद तो हमें आयेगी। वह भला हमें क्या याद करेगा।

वर्षा से पहाड़ी की ढलवान फिसलनी हो गयी थी। मैं बच-बच कर उतर रही थी। वर्षा की बूंदों की खदबद सुनाई दे रही थी या मेरे मस्तिष्क में ही विचार और कल्पनाएँ खदबदा रही थीं। मैं पहाड़ी से उतर सड़क पर चल दी।

सड़क पर बहुत दूर नहीं जा पायी थी कि लोगों की भीड़ सड़क पर खड़ी दिखाई दी। मैं जल्दी में थी, बचकर निकल जाना चाहती थी। पुकार सुनाई दी—"ये देख, तेरा आदमी गिर गया है।"

मेरा रोम-रोम खड़ा हो गया और फिर चक्कर आ गया। जान पड़ा, गिर पड़ूँगी। सुध संभाली तो भीड़ में घुसी। लोगों ने हट कर मुझे जगह दे दी। मैं इनके पास बैठ गयी। और फिर भीड़ ने मुझे घेर लिया।

लोगों ने इन्हें, आती-जाती गाड़ियों और भीड़ से बचाकर उठाकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सड़क के किनारे रख दिया था। शरीर कीचड़ में लथपथ, आधा डूबा हुआ था। कँपकँपी आ रही थी और ऐंठ-ऐंठ कर रह जाते। बगल में ही नाली में वर्षा का गंदला पानी जोर से बह रहा था; परन्तु इनकी हंफनी स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। मैंने इनके शरीर पर हाथ रखा, शरीर बिल्कुल पानी सा ठंडा था। और अब भी उसपर वर्षा की बौछार पड़ रही थी। इन्हें ओढ़ा देने के लिए मेरे पास कुछ न था। अपनी आधी साड़ी फाड़ने का यत्न किया, परन्तु गला हुआ कपड़ा भीग कर फटा नहीं, उंगली भर टुकड़ा मेरे हाथ में आ गया। हताश हो साड़ी को फिर अपने शरीर में लपेट लिया। उन्हें ओढ़ाने को किसी ने कुछ नहीं दिया। किसी के पास कुछ था ही नहीं। मर्द कोपीनें पहने हुए थे और स्त्रियाँ मेरी तरह गली हुई चिथड़ा साड़ियाँ।

"ओढ़ा या न ओढ़ा, इससे क्या हो जायेगा," कोई बोला। मेरी गर्दन झुक गयी।

एक आदमी ने इन्हें कंधों से उठाया, दूसरे ने पाँव सँभाले। मैं पीछे-पीछे चलने लगी। दूसरी स्त्रियाँ सान्त्वना देती हुई मेरे साथ साथ चलने लगीं। वर्षा में इनके शब्द मेरे कानों तक न पहुँच पाये। कभी वे कुछ पूछ कर उत्तर के लिए मेरा मुंह देखने लगते तो शब्द मुख को न आता।

"क्या बहुत दिन से बीमार था ?"

"हाँ, कई दिन से।"

"क्या तेरे बेटे नहीं हैं? मदद को···।"

"हां···नहीं···यहाँ नहीं हैं।"

मुँह बहुत सूख गया तो मैंने होठों पर जीभ फेरी। कुछ नमकीन सा और वर्षा के मीठे जल का स्वाद जान पड़ा। मैंने नहीं जाना, मेरे आँसू बह रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[२९]

वह रात कभी कैसे भूल सकती है। वे स्मृतियाँ चौंधिया देने वाली ज्वालाओं की तरह अमिट हैं। वे दाहक भी हैं और कभी उनका प्रकाश सान्त्वना भी देता है। जब इन स्मृतियों का उद्वेग असह्य हो जाता है तो शिथिल मस्तिष्क पर मूढ़ता का कोहासा छा जाता है। परन्तु वे ज्वालाएँ बुझ तो नहीं सकतीं। वे तो मुझे भस्म रकरके ही समाप्त होंगी।

वह भयावनी रात मेरी स्मृति में गहरी गढ़ी हुई है। कीचड़ भरी सूनी सड़क पर अकेले चलना। मंदिर के शिखर पर सदा जलती रहने वाली ज्योति की ओर मैंने आँख उठा कर देखा, वह भी बुझी हुई थी। आकाश में तारे भी नहीं थे। घोर अंधकार था। भूत प्रेत अंधकार में चीखते-चिंघाड़ते मेरी ओर झपट रहे थे। मैं जानती थी, मंदिर के शिखर पर जलनेवाली ज्योति वर्षा में नहीं जल सकती। फिर भी मन भय से काँप रहा था।

लोगों ने इन्हें लाकर पत्थर के फर्श पर लिटा दिया। मैं इनके समीप बैठ गयी। किसी ने लाकर एक लालटेन पास रख दी। लालटेन हवा के झोंकों और वर्षा में भी स्थिर जल रही थी। इनका शरीर कीचड़

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में भरा हुआ था और भीगा था। मैंने कीचड़ पोंछ कर साफ किया एऔं सिर गोद में ले लिया। साथ आये लोग एक-एक दो-दो करके चले गये। वे करते भी क्या।

दर्द के कारण ये अपना सिर पटक रहे थे। कभी बेटों को पुकारते और कभी कुछ और बड़बड़ाते। मैं समझ न पाती। लालटेन के प्रकाश में इनका ज्वर से तपा चेहरा भयानक लग रहा था। होंठ फैले हुए थे, हाथ-पाँव बच्चे की तरह बेबस हो रहे थे। कभी दाँत पीसने लगते। हवा से बौछार भीतर आ रही थी। मैं इनकी बात समझने के लिए इनके मुख पर कान रख देती; परन्तु समझ न पाती।

रात की घड़ियाँ बीतती जा रही थीं। इनके शरीर की तपन के कारण चेतना उड़ गयी थी। आधी रात का सन्नाटा आ गया। वह क्षण, जब रात्रि समाप्त होकर दूसरे दिन का आरम्भ होने लगता, जब प्रकृति भी रुक कर नीरव हो जाती।

इनकी कँपकँपी बन्द हो गयी। शरीर की ऐंठन ढीली पड़ने लगी। इन्होंने आँखें खोल दीं और हाथ उठाकर मेरे आसू पोछने लगे। बोले—

"रोओ मत, जो होना है सो तो होगा ही। रोने से क्या होता है।"

"चुप रहो?" मैं बोली, "चुप रहो, आराम आ जायेगा।"

"अब क्या अच्छा होऊँगा? समय आ गया," ये बोले,—"अब जा रहा हुँ। समय आ गया तो तुम क्या रोक लोगी! अब सब आराम हो जायेगा, तू रोना मत।"

"तुम्हारे लिए क्या रोऊँगी," मैं बोली—"मैं तो अपने ही लिए रो रही हूँ। तुम्हारे बिना कैसे जीऊँगी। तुम्हारे बिना मेरे लिए क्या है।"

"ऐसा क्यों कहती है," इन्होंने कहा—"तेरे बच्चे हैं" और चुप हो गये। फिर कुछ पल बाद मेरा नाम पुकार कर बोले:—

"हम लोगों ने सुख भी तो पाया... आपस में बड़ा सहारा था।"

"हाँ मेरे मालिक, बहुत।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अब जा रहा हूँ, तू सहारा दे।"

मैंने झुककर अपना मुख इनके मुख से लगा लिया। इनकी हल्की-हल्की साँस मेरे गालों पर फूल की पंखुड़ी की तरह लग रही थी। अपना मुंह इन्होंने मेरी ओर कर दिया और अंतिम स्वाँस ले ली। पलकें मुंद गयीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[३०]

मैं अकेली रह गयी। इनका शरीर भस्म बन गया। वह भस्म वायु के झोंकों से उड़ गयी और वर्षा ने उसे घोल कर धरती में रचा दिया। उनका कोई मूर्त चिह्न न रह गया। वे केवल मेरी स्मृति में ही रह गये।

दिन बीतते गये! मैं अपने छिन्न-भिन्न बिखरे हुए जीवन के टुकड़ों को चुन-चुन कर फिर से जीवन के भांडे को बनाने का यत्न करने लगी। परन्तु जब उसका मूल आधार ही नहीं रहा था तो वह कोई रूप कैसे ले सकता था। अपनी निस्सहाय अवस्था में मैंने पुली को ही पुकारा। जाने उस अनाथ अबोध लड़के को क्या-क्या कहा सुना होगा, क्या-क्या सब्ज बाग दिखलाये होंगे—रोग से मुक्ति, खेल कूद कर सुखी और निश्चिन्त जीवन। उन बातों को याद कर मैं लाज से सिहर उठती हूँ। लड़के ने अपनी करुणा और सहानुभूति से मेरे बिंधे हुए हृदय पर मलहम का आलेप कर दिया। मेरे हृदय के रोते हुए अभाव को पूर्ण कर दिया। मैं गाँव लौटी तो अकेली नहीं थी।

घर लौट आने की अनुभूति में कितनी शाँति थी! बैलगाड़ी एक झकोला खाकर रुक गयी। पहली नजर में परिचित धरती और खेतों को पहचान कर मेरी संतप्त आत्मा शाँत हो गयी। पाँव के तले धरती का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्पर्श सान्त्वना की गोद की तरह जान पड़ रही था। असह्य दुःख की स्मृतियाँ पलक मारते में सुदूर-अतीत की बात बन गयीं।

अस्पताल की इमारत अब भी पूरी नहीं हो पायी थी। चारों ओर मचान बंधे हुए थे। सिलवा बाहें फैलाये दौड़ा हुआ मेरी ओर झपट आया। मेरा बेटा····

"बड़े भाग हैं," सिलवा पुकार उटा—"तुम आ गयीं अम्मा।" उसने मुझे बाहों में लपेट लिया। लड़की भी हाँफती हुई आयी और मुझसे लिपट गयी। पूली एक ओर अकेला खड़ा चुपचाप देख रहा था। बजने-वाली गाडी का खिलौना उसके हाथ में था।

पूली को अपनी ओर खींच कर मैंने कहा—"यह भी हमारा बेटा है। तुम्हारे पिता ने और मैंने इसे गोद ले लिया।"

इरा ने पूली को अपनी बाँह में ले लिया और स्नेह से बोली—"हाय कितना थक गया। "भूख लगी होगी! चल, तुझे भात दूं।"

"अम्मा, अब तुम कोई फिकर न करो" सिलवा ने संक्षेप में सब कुछ कह दिया।

हम सब मौन खड़े थे। जो बता देना उचित और आवश्यक था, वह कहने का यत्न कर रही थी। परन्तु शब्द मुंह में नहीं आ रहे थे।

"अम्मा, रहने दो तुम, सब हो जायेगा, सुन लेंगे।"

"अंत समय उन्हें कष्ट नहीं हुआ"—मैंने आँखों पर आँचल रख कर कहा, "फिर बता दूंगी।"

॥ इति ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्पर्श सान्त्वना की गोद की तरह जान पड़ रही था। असह्य दुःख की स्मृतियाँ पलक मारते में सुदूर-अतीत की बात बन गयीं।

अस्पताल की इमारत अब भी पूरी नहीं हो पायी थी। चारों ओर मचान बंधे हुए थे। सिलवा बाहें फैलाये दौड़ा हुआ मेरी ओर झपट आया। मेरा बेटा....

"बड़े भाग हैं," सिलवा पुकार उठा—"तुम आ गयीं अम्मा।" उसने मुझे बाहों में लपेट लिया। लड़की भी हाँफती हुई आयी और मुझसे लिपट गयी। पूली एक ओर अकेला खड़ा चुपचाप देख रहा था। बजने-वाली गाडी का खिलौना उसके हाथ में था।

पूली को अपनी ओर खींच कर मैंने कहा—"यह भी हमारा बेटा है। तुम्हारे पिता ने और मैंने इसे गोद ले लिया।"

इरा ने पूली को अपनी बाँह में ले लिया और स्नेह से बोली—"हाय कितना थक गया। "भूख लगी होगी। चल, तुझे भात दूं।"

"अम्मा, अब तुम कोई फिकर न करो" सिलवा ने संक्षेप में सब कुछ कह दिया।

हम सब मौन खड़े थे। जो बता देना उचित और आवश्यक था, वह कहने का यत्न कर रही थी। परन्तु शब्द मुंह में नहीं आ रहे थे।

"अम्मा, रहने दो तुम, सब हो जायेगा, सुन लेंगे।"

"अंत समय उन्हें कष्ट नहीं हुआ"—मैंने आँखों पर आँचल रख कर कहा, "फिर बता दूंगी।"

॥ इति ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

H83 KRC 36011

GPS-1283/71-5000.

DATE SLIP

This book was taken from the Library on the date last stamped. A fine of (a) 00.05 paise per book volume for the first 20 days of delay per day. (b) 00 20 paise per book volume per day, of delay thereafter which shall be realised from the defaulters before a new book is issued to him/her.

7-1-81 25-2-81 16190 3/12/87			

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Acc. No. 36011

Class No. H83 Book No. K12C

Author

Title

Borrower's No.	Date of Issue	Borrower's No.	Date of Issue
233.G	3/12/87		

Srinagar.

A book borrowed must be returned within 14 days of its issue, it may be reissued for fifteen days, if not requisitioned by another member. Members residing outside Srinagar may return books within thirty days of their issue.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE